

मोक्षशास्त्र प्रवचन दशम् भाग

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

आदिके तीन ज्ञानोंमें विपर्ययताकी संभावना मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान विपर्यय भी होते हैं। विपर्ययका अर्थ है अन्य प्रकार याने जिस प्रकार पदाथो का स्वरूप है उस प्रकार जाननेमें आवे सो तो है सम्यग्ज्ञान, और उससे उल्टा जाननेमें आवे इसे कहते हैं विपरीत ज्ञान। किससे विपरीत? विपर्यय शब्दका अर्थ होता है उल्टा, तो किससे उल्टा? तो अर्थ आया सम्यग्ज्ञानसे उल्टा, यह कैसे जाना गया? यों जाना गया कि यह सारा ही प्रकरण सम्यग्ज्ञानका था। अब सम्यग्ज्ञानका वर्णन तो समाप्त हुआ, उसके बाद फिर उससे विपरीत ऐसा कहनेसे वही अर्थ बना कि सम्यग्ज्ञानसे विपरीत मिथ्याज्ञान मति श्रुत अवधिज्ञान है, क्यों है यह विपरीत ज्ञान? और मिथ्यादर्शनका परिग्रह लगनेसे दर्शन मोहनीयका उदय होने पर इस जीवको मिथ्यादर्शनरूप परिणाम होता है। उस परिणामके साथ स्वार्थ समवाय होनेसे मायने यह ही तो जीव है जिसको मतिज्ञान हो रहा और वहीं हो रहा है मिथ्यादर्शन तो उस मिथ्यादर्शनका परिणाम होता है, उसके साथ समवाय है याने एक ही अर्थ में है, एक ही जीवमें मिथ्यादर्शन है और मतिज्ञान है तो वह मतिज्ञान विपरीत हो जाता है।

कुज्ञानोंमें विपरीतताका कारण आधारके दोषसे आधेयमें दोषका आना यहाँ शंकाकार कहता है कि यह बात तो कुछ जंचतीसी नहीं। कैसा ही दर्शन मोह हो या अन्य कुछ बात हो जीवमें तो मतिज्ञान कैसे विपरीत हो जायेगा? देखो हीरामणि यदि संडासमें भी गिर जाय तो हीरामणि तो विपरीत नहीं हो जाता कि वहाँ गिरनेसे वह लोहा बन जाये या और कुछ हो जाय, ऐसा तो नहीं होता। इसी तरह आत्मामें दर्शन मोहका उदय होनेसे मिथ्यादर्शन परिणाम भी हो तो हो, पर यह मतिज्ञान विपरीत कैसे हो जायेगा? स्वभावका विनाश तो न होना चाहिए। हीरा रत्न गिर गया अशुचिगृहमें तो हीरा रत्नका स्वभाव तो नहीं बदल जाता। इसी प्रकार मति श्रुत अवधिज्ञानका भी स्वरूप न बदलना चाहिए। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे कड़वी तूम्बीमें दूध रख दिया जावे तो दूधकी प्रकृति बदल जाती है या नहीं? बदल जाती है। दूध भी कड़वा हो जाता है तो इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि रूपी पात्रमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान हो तो वह भी दूषित हो जाता है। आधारके दोषसे आधेयमें दोष आ जाता है और उसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। तो जैसे कड़वी तूम्बीमें रखा हुआ दूध दूषित हो जाता है ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीवमें हुआ मतिज्ञान दूषित हो जाता है और देखा भी जा रहा है। मिथ्यादर्शनका उदय होने पर इस जीवके अन्यथा व्यापार होता है, अन्यथा याने अन्य प्रकारकी इसकी दृष्टि बनती है। देखो जगतके प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें हैं। कोई पदार्थ

किसी दूसरे पदार्थके स्वरूपको ग्रहण नहीं करता। कभी भी नहीं कर सकता। निमित्त सन्निधान कितने ही हों, पर कोई पदार्थ अपना गुणपर्याय किसी दूसरे पदार्थको नहीं दे सकता। वस्तुस्वरूप तो यों है, पर मिथ्यादृष्टि जीवके कैसी कल्पनायें होती हैं कि यह घर मेरा, यह पुत्र मित्र स्त्री आदिक मेरे, इस तरहकी उनकी कल्पना जगती है। सो ये सब कल्पनायें मिथ्या हैं। वस्तुस्वरूपके विपरीत हैं तो इस तरह मतिश्रुतका परिणमन दूषित हो जाता है।

एक बात और समझनी चाहिए कि एक दृष्टान्त तो ऐसा मिल गया कि आधारके दोषसे आधेयमें दोष आता और एक उदाहरण ऐसा भी है कि आधारके दोषसे भी आधेयमें दोष नहीं आता। जैसे शंकाकारका दिया हुआ ही दृष्टान्त अशुचि घरमें रत्न हीरा पड़ा हो तो वह तो स्वभाव नहीं बदलता। वह अशुचि घर हीरा रत्नमें विकार उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं है। सो यह तो अपनी-अपनी योग्यता प्रकृतिकी बात है कि कोई पदार्थ दूषित आधार पाकर विकृत हो जाये, कोई पदार्थ दूषित आधार पाकर विकृत न हो, तिस पर भी इतनी मलिनता तो हीरा रत्नमें आ ही गई कि वहाँ अशुचि बन गया, उसमें भी कुछ न कुछ अन्यथापन आ जाता है। अन्यथा जो दूकानमें रखा हीरा रत्न है उसकी तरह लोग उस हीरा रत्नको प्यारसे क्यों नहीं जेबमें रखते? क्यों उसे पानीसे धोते, साफ करते अथवा उसे अग्नि दिखाते तो अन्यथापन वहाँ भी आ जाता है। विशेष अन्यथापन न आये, अन्य ढंगमें अन्यथापन न आये, सो यह तो अपनी-अपनी वस्तुकी योग्यता है तथा वह तूम्बीके सन्निधानको पाकर दूषित हो तो कहीं तूम्बीने अपने दोष दूधमें नहीं डाल दिये, लेकिन उसका सम्बंध पाकर ऐसा ही परिणमन होता कि दूध स्वयं अपने स्वरूपमें विपरीत परिणम जाता है, दूषित हो जाता है। तो इस प्रकार मिथ्यादर्शनका उदय होने पर मतिज्ञान दूषित हो जाता है और वही मतिज्ञान सम्यग्दर्शनका उदय होने पर सम्यक् हो जाता है, क्योंकि मिथ्यादर्शनका परिणाम न रहा, इसलिए उन ज्ञानोंमें समीचीनता आती है। इस कारण सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शनके उदय भेदसे मति आदिक ज्ञानोंमें विभिन्नता हो जाती है। कोई सम्यक् रहता, कोई मिथ्या रहता।

सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि द्वारा पदार्थोंका एक समान दिखाई दिया जाने पर विपर्ययज्ञानकी असंभवताकी एक जिज्ञासा अब यहाँ एक शंकाकार कहता है कि हमको तो मिथ्यादृष्टिके ज्ञानमें सम्यग्दृष्टिके ज्ञानमें कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता। आंखोंसे जैसे मिथ्यादृष्टि देखता है वैसे ही सम्यग्दृष्टि देखता है। सफेदको सफेद मिथ्यादृष्टि भी कहता, सफेदको सफेद सम्यग्दृष्टि भी कहा। यह घड़ा है, यह मकान है, यह घर है, जैसे सम्यग्दृष्टि जानता वैसे ही मिथ्यादृष्टि भी जानता। कहीं ऐसा तो नहीं देखा गया कि सम्यग्दृष्टि तो ऐसी पकवान खाता हो और मिथ्यादृष्टि डेला पत्थर को रोटी मानकर चबा लेता हो? जब दोनोंका ज्ञान समान लोकमें देखा जाता है तो यह कैसे कहा गया कि सम्यग्दृष्टि का मतिज्ञान तो सम्यक् होता और मिथ्यादृष्टि का मतिज्ञान विपरीत होता है। ऐसी ही अवधिज्ञान की बात है। अवधिज्ञानी जीव जैसे अवधिज्ञानसे रूपी पदार्थोंको निश्चित करता है,

जानता है वैसा विभंग ज्ञानी जीव भी रूपी पदार्थोंको निरखता है, इसलिए विपरीतता है इन ज्ञानों में। यह बात तो युक्त नहीं जंचती। इस शंकाके समाधानमें ग्रन्थकार स्वयं ही सूत्रमें उत्तर दे रहे हैं।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

दर्शनमोहके उदयसे मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तत्त्वोंमें समीचीनताका परिचय न होनेके कारण ज्ञानमें विपर्ययताकी सिद्धि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान क्यों विपरीत होते हैं? उसका कारण है कि सम्यक्त्वरहित जीव सत् और असत् पदार्थोंमें विशेषता नहीं जान पाता, भेद नहीं जान पाता। यह सत् ही है, यह समीचीन है, यह मिथ्या है, ऐसा भेद नहीं जान पाता और अपनी इच्छानुसार उनकी जानकारी रखता। अब ऐसी जानकारी रखते हुए में चाहे कभी वस्तुस्वरूपके अनुसार भी बोल जाय अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव तो भी भेदज्ञान न होनेसे परिचय न होनेसे, परिचय न होने से उसे दृढ़तम ज्ञान नहीं कह सकते, सम्यग्ज्ञान नहीं कह सकते। और ऐसी स्थिति उस पागल पुरुषकी तरह हो जाती है जैसे पागल पुरुष कभी माँको स्त्री कह दे, कभी स्त्रीको माँ कह दे और कदाचित् कभी माँको माँ कहे और स्त्रीको स्त्री कहे तो क्या उस समय वह पागल नहीं है? अरे कह तो दिया, पर उसके चित्तमें दृढ़ता तो नहीं है, निर्णय तो सही नहीं है। इसी तरह रूपादिक पदार्थोंके जाननेकी बात तो लौकिक है। उसका तो यहाँ प्रकरण नहीं है, प्रकरणतो मोक्षमार्गका है। मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोंमें यथार्थ परिचय श्रद्धान होवे उसका यह प्रकरण है। तो वहाँ मोही जीवका यथार्थ निर्णय और श्रद्धान नहीं है। कदाचित् किसी आवेशमें धर्माविशमें वस्तुस्वरूपके अनुकूल भी शब्द बोल जायें, लेकिन उसका अनुभव तो नहीं है, इस कारण वह विपरीत ज्ञान है। अब सूत्रमें लिखे हुए शब्दोंके अनुसार अर्थ समझिये। सूत्रमें लिखा है सत् और असत्। तो सत् शब्दके तो अनेक अर्थ होते हैं। सत् अस्तित्व वाला है यह भी अर्थ है, सत्का अर्थ समीचीन भी है, सत्का अर्थ सत्ता भी है। तो प्रकरणवश सत्का अर्थ समीचीन लेना है, प्रशस्त लेना है। याने सत्का जानना, सही तत्त्वका जानना, असत्का जान, मिथ्यारूपको जानना। तो सत् और असत् में भेद न होनेसे और अपनी इच्छानुसार उपलब्धि होनेसे वह विपरीत ज्ञान होता है। किस तरह? उन्मत्त पुरुषकी तरह। जैसे उन्मत्त पुरुष दोषका उदय होने से, दिमागमें फर्क आ जानेसे, इन्द्रिय और बुद्धि अपहृत हो जाने से, बरबाद सी हो जानेसे जैसे उन्मत्त विपरीत ही ग्रहण करता है। कहो वह घोड़ेको बैल मान ले, बैलको घोड़ा मान ले, लोहेको स्वर्ण कह दे, स्वर्णको लोहा कह दे और कदाचित् लोहेको लोहा ही कहे, स्वर्णको स्वर्ण कहे तो भी भेदका ज्ञान तो नहीं है, इसलिए कि उसकी बुद्धि बिगड़ी है और वह विपरीतग्राही है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव भी दर्शन मोहके उदयसे बाह्यपदार्थोंको आत्मारूपसे निरखता है इसलिए वह विपरीतग्राही है। यों मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान विपरीत ज्ञान होते हैं।

इस सूत्रमें जो सत् असत् शब्द कहे गये हैं उनके बहुत अर्थ होते हैं। जैसे कि सत् मायने विद्यमान और असत् अर्थात् अविद्यमान। विद्यमान और अविद्यमान पदार्थ में, धर्मकी विशेषता न

करके याने एक अविद्यमानको विद्यमान कहना, विद्यमानको अविद्यमान कहना ऐसी अपनी इच्छानुसार जानकारी करनेसे विपरीत ज्ञान होता है, क्योंकि उसने कभी सत्को असत् मान लिया, असत्को सत् और इस तरह सत्को सत् भी माने और असत्को असत् भी माने, किन्तु दृष्टिका प्रकाश तो नहीं है, इस कारण वे सब मति, श्रुत, अवधि मिथ्याज्ञान होते हैं। सत्को असत् कहना, असत्को सत् कहना, यह किस प्रकार है? उसका कुछ उदाहरण देते हैं।

गुणपर्यायरहित द्रव्य कल्पित करने वाले मन्तव्यमें सत् असत्की अविशेषताका ब्यामोह एकान्तवादियोंने अपनी कल्पनासे जो सत् असत्का अविशेष रूपसे ग्रहण किया है उनमें से देखिये कोई दार्शनिक तो द्रव्यको ही मानते हैं, रूपादिकको नहीं मानते। जैसे एक ही सद्ब्रह्म है, ब्रह्म है, आनन्दस्वरूप है। आदिक शब्दों द्वारा कथन करके एक अद्वैत सत् ब्रह्म ही तो माना। रूपादिक अथवा अवस्था पर्याय ये कुछ भी तो नहीं माना। सो यदि द्रव्य ही द्रव्य है, रूपादिक नहीं है तो लक्षणका अभाव हो गया। उसका कोई स्वरूप, अवस्था मानते ही नहीं है। तो जब स्वरूप अवस्था आदिक नहीं मानते तो लक्षण तो कुछ रहा नहीं। तो जो द्रव्य कहा जा रहा है उस द्रव्यका भी अनवधारण हो गया। कोई निर्णय न हो सका। और यों भी सुनो। बाहरी चीजें तो हैं नहीं, केवल द्रव्य ही माना और उस द्रव्यका इन्द्रियके साथ सन्निकर्ष होता तब उसका ज्ञान होता है। तो जब इन्द्रियसे सन्निकर्ष हुआ द्रव्यका तो रूपादिक तो माने नहीं, कोई अवस्था स्वरूप तो माना नहीं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि इन्द्रियका द्रव्यके साथ सन्निकर्ष हो गया तो सर्वात्मक रूपसे सन्निकर्ष हो गया, फिर तो द्रव्यकी पूरे रूपसे जानकारी होनेका भी प्रसंग आना चाहिए। जैसे रूप मानते थे तो चक्षुका रूपमुखेन सन्निकर्ष हुआ सो रूप ही जाना गया। अब रूपादिक तो कुछ रहे नहीं, तो इन्द्रियसे जो सन्निकर्ष बना सो समूचे द्रव्यसे बना और यों समूचे द्रव्यका ग्रहण हो जाना चाहिए। दूसरी बात यह कि इन्द्रियका भेद भी न रहना चाहिए। समूचा द्रव्य चक्षुसे भी जाना गया, समूचा द्रव्य स्पर्शन आदिकसे भी जाना गया। फिर यह कैसे भेद बना कि यह तो चक्षुरिन्द्रिय है और यह स्पर्शनइन्द्रिय है, यह घ्राणेन्द्रिय है। जब रूप, रस, गंध, स्पर्श कुछ होते ही नहीं, यह मान लिया गया तो इन्द्रियभेद भी नहीं बन सकता, पर ऐसा तो सही है नहीं ना? इन्द्रियभेद है, पदार्थमें रूपादिक है, प्रतिनियत व्यवस्था चल रही है। चक्षुइन्द्रियमें रूपका ग्रहण होता है तो कैसे यह सत्य कहा जा सकता है कि बस द्रव्य ही है, रूपादिक नहीं है। फिर भी कुछ दार्शनिक मानते हैं तो विपरीत हो गया ना? सत्को असत् और असत्को सत् कल्पित कर लिया ना। रूपरहित द्रव्य असत् है, उसे तो मान लिया सत् और रूपादिक हैं उनको मान रहे असत् तो ऐसा विपरीत ग्रहण होता है जिससे यह ज्ञान विपरीत ज्ञान कहलाने लगा है।

द्रव्यरहित पर्यायकी कल्पनाके मन्तव्यमें सत् असत्की अविशेषताका ब्यामोह अब अन्य दार्शनिककी बात सुनो। कोई यह कहता है कि बस रूपादिक ही तो हैं, द्रव्य कुछ नहीं है। याने रूप, रस, गंध, स्पर्श बस ये ही वस्तु हैं, कोई प्रदेशात्मक, कोई अन्य आधार इसमें कुछ वस्तु है, ऐसा कुछ नहीं

मानता तो भला सोचो तो सही कि यदि रूपादिक ही वस्तु हैं, द्रव्य कुछ है ही नहीं तो रूपादिक निराधार हो गए, फिर उनका आधार क्या रहा? केवल रूप ही रूप है, केवल रस ही रस है, आधार क्या रहा? जब आधार कुछ नहीं है तो रूपादिकका भी अभाव हो जायेगा। और रूपादिक तो ये परस्पर विलक्षण धर्म हैं। रूप तो शुक्ल कृष्ण आदिक कहलाते हैं, रस खट्टा, मीठा आदिक कहलाते हैं। ये तो परस्पर विलक्षण चीजें हैं तो वे रूपादिक फिर ये बिखरे-बिखरे फिरे। ऐसा क्यों है कि एक ही जगह रूप, रस, सब पाये जाते रहे हैं। जब परस्पर विलक्षण हैं तो वे भिन्न ही भिन्न हैं और कहो कि नहीं, उनका समुदाय बन जाता, वे सब इकट्ठे पिण्डके रूपमें हो जाते तो उनका समुदाय भी हो तो यह बतलाओ कि वह एक ही वस्तु है कि भिन्न-भिन्न वस्तु हैं? अगर एक वस्तु हो गई तब फिर तो वे रूप, रस आदिक भिन्न-भिन्न रूप न रहे और कहो कि भिन्न-भिन्न हैं पिण्ड होने पर तो वही प्रश्न फिर खड़ा रहता है कि वह तो निराधार हैं। उनकी सत्ता ही क्या है? तो कोई दार्शनिक जो मानते हैं कि रूपक्षण, रसक्षण बस ये ही तत्त्व हैं, द्रव्य कुछ वास्तवमें नहीं है तो वह भी देखिये अविद्यमानको विद्यमान कर लिया, विद्यमानको अविद्यमान बना लिया। द्रव्य सत् है, उसे माना ही नहीं, रूपादिक स्वतंत्र ये सब असत् हैं, उनको वस्तु मान लिया, तो यही तो है उन्मत्त पुरुषोंकी तरह सत् और असत्में भेद न समझ पाना। और फिर जैसा मन चला वैसा ही कह देना।

भेदाभेदविपर्ययकी कल्पनाके मन्तव्यमें सत् असत्की अविशेषताका व्यामोह इसी तरह भेदाभेदमें भी भेदका अन्तरका ज्ञान सही ज्ञान नहीं होता है मिथ्याज्ञानी के। जैसे जो कोई मानते हैं कि रूप भी है, द्रव्य भी है और माने यों कि हैं दोनों भिन्न-भिन्न रूपमें अलग पदार्थ हैं तो ऐसा मानने वाले फिर कैसे समझ पायें कि यह द्रव्य है, यह रूप है। जब लक्ष्य लक्षण भाव न रहा परस्पर, वे भिन्न-भिन्न हो गए तो यह कैसे समझ जाये कि यह इसका रूप है, यह रूपवान है? यदि शंकाकार दार्शनिक यह कहे कि जैसे दंडा और दंडीका ज्ञान होता है ना? लक्ष्यलक्षण भेद बन जाता। दंडी मायने दंडे वाला तो दंडा लक्षण हो गया और दंडे वाला पुरुष लक्ष्य बन गया और हैं भिन्न-भिन्न दोनों चीजें। दंडा जुदा है, दंडा वाला जुदा है तो जैसे जुदी-जुदी इन दो वस्तुओंके होने पर लक्ष्यलक्षण भाव बन गया ऐसे ही रूपादिक और द्रव्य इनके भिन्न-भिन्न होनेपर भी लक्ष्यलक्षणभाव तो बन ही सकता है।

इस आशंकाका समाधान यह है कि दृष्टान्त ही विपरीत दिया गया। दंडा और दंडी आखिर ये सब पृथक्-पृथक् सत् ही तो हैं, दोनों ही वस्तु हैं। दंडा भी सत् है और पुरुष भी सत् है। तो दोनों पृथक्-पृथक् सत् हैं, उनके पृथक्-पृथक् लक्षण बन गए, क्योंकि सत् तो है, सम्बन्ध तो है, मगर पृथक्-पृथक् रूप और द्रव्य ये तो सत् ही नहीं हैं। द्रव्यरहित रूप क्या? रूपरहित द्रव्य क्या? रूपादिक जो अमूर्त गुण हैं उनका क्या सत्त्व है और रूपादिक रहित द्रव्यका क्या सत्त्व है और फिर दूसरा दोष यह है कि रूपादिक गुण तो अमूर्त हैं और वे द्रव्यसे भिन्न हैं। पुद्गलद्रव्य मूर्तिक होता, रूपादिक अमूर्त हैं। तो अमूर्त रूपादिकके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध कैसे जायेगा? जब इन्द्रियका सन्निकर्ष न हो

सकेगा। तो रूपादिकका अभाव हो गया? ज्ञान ही न बनेगा उनका। द्रव्य तो भिन्न हैं ना रूपादिकसे तो उसके साथ तो सन्निकर्षका प्रश्न ही नहीं उठता और द्रव्य है भिन्न चीज, वह कभी जानकारीमें कारण नहीं बन सकता। तो इस तरह यह विपरीत रूपसे ग्रहण किए विद्यमानको अविद्यमान कहनेके लिए अविद्यमानको विद्यमान कह डाला। एकमें भेद डाल दिया, सर्वथा भेद। तो ऐसे स्वरूपविपर्यय और भेदाभेदविपर्ययके रूपसे जानकारी जहाँ होती है वहाँ सम्यग्ज्ञान नहीं होता।

कारणविपर्ययकी कल्पनाके मंतव्यमें सत् असत्की अविशेषताका व्यामोह अब कारणविपर्ययकी बात सुनो याने वस्तुका कारण कुछ है और कारण कुछ माने तो वह विपरीत ज्ञान कहलाता है। जैसे कोई दार्शनिक कहता है कि जितने भी जगतमें जो कुछ दृश्यमान हैं घट रूपादिक जो कुछ भी जगतमें हैं उसका कारण है अव्यक्त प्रकृति और कैसे रचना होती है इस जगत की? उसका क्रम यह है कि अव्यक्तसे तो पहले महान् उत्पन्न हुआ, महान्से अहंकार हुआ और अहंकारसे तन्मात्रायें हुई याने स्पर्श रस आदिक, इनसे फिर इन्द्रियाँ बनीं और इन्द्रिय से फिर महाभूत बना पृथ्वी जल आदिक, वहाँ मिट्टीका पिण्ड हुआ, उससे फिर घड़ा बना, ऐसे ही सब वस्तुओंमें लगाना। तो इस सारे जगत का उत्पाद अव्यक्त प्रकृतिसे होता है।

अब देखिये जो प्रत्येक वस्तुका निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है, जिसकी योग्यतासे बाह्य निमित्त सन्निधान मिलने पर परिणति होती है, उत्पत्ति होती है अवस्थारूपसे उस सीधी बातको इसमें माना नहीं, क्या और कल्पना की? किसी एक अव्यक्त की। उस अव्यक्तसे ये सब धीरे-धीरे बढ़-बढ़कर सृष्टि हो जाती है। तो यह कथन संगत नहीं है, कोई कि वह अव्यक्त प्रधान अमूर्त माना गया, अवयव रहित माना गया, निष्क्रिय माना गया, अतीन्द्रिय अनन्य नित्य और दूसरेके द्वारा प्रयोगमें न आ सकने योग्य माना गया, और जितने ये कार्य दिख रहे हैं ये सब इस माने गए कारणभूत अव्यक्त प्रकृतिसे विलक्षण हैं। तब फिर विजातीयसे विजातीयकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। प्रधान अमूर्त है, घट मूर्त है, प्रधान अवयवरहित है, घट सावयव है। घटके हिस्से हुआ करते हैं। प्रधान निष्क्रिय है, घट क्रियावान है, कहींसे कहीं चला जाये। प्रधानको अतीन्द्रिय कहा, ये घट आदिक इन्द्रियागोचर हैं प्रधानको अन्तरहित कहा। घट तो फूट जाता है, प्रधान नित्य है, घट अनित्य है। प्रधान किसीके द्वारा प्रयोगमें आने योग्य नहीं है। क्या किया जाये प्रधानको? क्या खाने-पीने, मसलने आदिके काममें आयेगा प्रधान? कौनसे प्रयोगमें है? न दिखता है, न कुछ है, और घट प्रयोगमें आनेकी चीज है। पानी भरें, पानी पीकर तृप्त हों। तो कलिप्त कारणसे घट आदिककी उत्पत्ति मानना, यह संगत बात नहीं है। तो जो वास्तविक कारण है उनको तो क्षण आदिक रूपसे जाननेकी और यदृच्छासे कल्पना करके कुछ से कुछ गढ़ लिया, ऐसी जहाँ दृष्टि होती है उसको सम्यग्ज्ञान कैसे कहा जा सकता है? वे सब मिथ्या ज्ञान हैं। तो जो प्रयोगमें नहीं आ सकता, प्रयोजन जिसका कुछ नहीं उसकी तो कल्पना कर डाली जो एकदम दृष्ट है, प्रत्यक्ष सिद्ध है, वस्तु है, जिसकी शक्ति परिणमन होता है यह बात सब ओझल कर दी।

प्रयोगरहित निष्क्रिय कल्पित प्रधान पदार्थसे सिद्धि, निष्पत्ति, व्यवहारकी असम्भवता जो दूसरेके द्वारा प्रयोगमें नहीं आ सकता ऐसा प्रधान और अचेतन माना गया। तो जो स्वयंअभिप्रायरहित है उसकी अभिप्रायपूर्वक उत्पत्ति कैसे हो सकती? कहा था ना कि अव्यक्त प्रधानसे पहले महान्की उत्पत्ति होती है, वह महान् क्या है? बुद्धि अभिप्राय। अचेतनसे अभिप्राय कैसे बने और अचेतन स्वयं अभिप्रायसे रहित है, उससे अभिप्रायपूर्वक क्रम वाला उत्पाद कैसे सम्भव है?

यदि यह कहे कोई शंकाकार कि एक तत्त्व पुरुष तो माना गया है याने आत्मामें तत्त्व दो हैं पुरुष और प्रधान। पुरुष मायने चेतन आत्मा, प्रधान मायने प्रकृति। सो यह चेतन आत्मा है, वह प्रधानको ऐसी प्रेरणा कर देगा कि वह महान् आदिककी उत्पत्ति करनेके लिए तैयार हो जाये, सो वहां यह कहना भी कैसे संगत हो सकता? तब पुरुष भी निष्क्रिय माना गया है, जैसे प्रधान निष्क्रिय कहा है, ऐसे ही पुरुषको भी, आत्माको भी इस दार्शनिकने निष्क्रिय कहा है। तो निष्क्रिय होनेसे पुरुष भी प्रधानको प्रेरित नहीं कर सकता कि वह महान् आदिकके रचनेके लिए तैयार हो जाये। और प्रधान स्वयं निष्क्रिय है ही, सो वह अपनेको महान् आदिकके उत्पत्तिके लिए तैयार भी नहीं कर सकता। याने पुरुष प्रेरणा करें तो भी प्रधान अपनी सृष्टि नहीं कर सकता और पुरुष स्वयं निष्क्रिय है, सो प्रेरणा कर ही नहीं सकता। जो स्वयं क्रियारहित है, लंगड़ा है, चल-फिर नहीं सकता वह अपना ही सहारा लेकर उठ करके चल दे, ऐसा नहीं देखा जा सकता। तो जब प्रधान स्वयं निष्क्रिय है तो वह अपने आपमें ऐसा प्रयोग बना ले कि वह उत्पन्न करने लगे, यह नहीं बन सकता।

सारांश यहाँ यह है कि जैसे जीव और अजीव दो तत्त्व कहे जाते हैं, जिसमें चेतना है सो जीव, जिसमें चेतना नहीं सो अजीव, ऐसे ही इसके एवजमें ये दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि पुरुष और प्रधान। पुरुष तो है चेतन, प्रधान है अचेतन, और दोनों निष्क्रिय हैं। पुरुषतो कोई सृष्टि होती नहीं, याने आत्मा से कोई सृष्टि नहीं चलती। सृष्टि चलाने वाला है प्रधान, अजीव, प्रकृति। सो इस मान्यतामें ये सब दोष आते हैं

अप्रयोजन कल्पनाओंकी भरमारकी व्यर्थता और फिर यह भी बतायें कि प्रधान तो अप्रयोजन है। उसका अभिप्राय नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। तो बिना प्रयोजन महत् अहंकार आदिककी उत्पत्ति कर देना, यह संगत नहीं जंचता। प्रयोजन बिना तो साधारण भी आदमी, बेवकूफ भी कुछ प्रवृत्ति नहीं करता। यदि शंकाकार यह कहे कि प्रधानका प्रयोजन तो है। क्या प्रयोजन है? भाई चेतन आत्मा प्रधानविकारको भोगोपभोगमें ले। यह प्रधानका प्रयोजन है, याने प्रधान पहले रूप, रस इन्द्रिय आदिककी उत्पत्ति करता है, महान् अहंकार जो प्रधानसे बनता है, उसका प्रयोजन यह है कि चेतन उसका भोग कर लें। यह कहना भी संगत नहीं। इसमें प्रधानका निज तो कुछ प्रयोजन न रहा। और दूसरी बात यह है कि आत्माको तो नित्य माना सर्वथा तो नित्य व्यापक आत्माके भोगका परिणाम ही नहीं बन सकता याने भोगनेकी स्थिति ही नहीं बन सकती। सो ये सारी बातें सीधी मानो। कार्यप्रणालीकी बातको छोड़कर कल्पना करके एक दिमागको परेशान किया जा रहा है। सीधी बात

दोषकी दिख रही है, इस कल्पनामें कि प्रधान अचेतन है तो वह कुछ भी प्रयोजन बना कैसे सकता? दूसरेको भी भोग करा कैसे सकता? अचेतन है वह स्वयं। जो अचेतन हो, जैसे यहाँ रसोईया या कोई मालिक अपने व दूसरेके खानेका प्रयोजन रखता, सो उसके लिए क्रिया और फल बन जायेगा। रसोई बनाना, भोजन कराना, पर प्रधानमें तो चेतना है ही नहीं। वह किसलिए प्रवृत्ति करेगा? तो प्रधान, स्वयं अपने आप कुछ कर सकेगा नहीं और आत्मा निष्क्रिय है सो वह प्रधानकी कुछ मदद कर सकेगा नहीं। फिर ऐसा समझना कि जितना जो कुछ भी जगत है उसकी रचना है, वह रचना सब अव्यक्त प्रधानसे हुई है केवल एक कपोल कल्पना मात्र है। तो यों पदार्थोंके कारणोंमें विपरीत श्रद्धा करना बस यही तो मिथ्यादर्शन का परिणाम है और जब इन बातोंकी कोई विशेष सही जानकारी नहीं है तो बस इसी कारण मिथ्याज्ञान कहलाता। यों मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मिथ्यादर्शनका उदय होनेपर ये मिथ्या कहलाते हैं।

स्वरूपविपर्यय, भेदाभेदविपर्यय व कारणविपर्ययकी कल्पनामें मिथ्याज्ञानरूपता अभी यहाँ कारणविपर्ययकी चर्चा चल रही है कि जैसे सम्यग्दृष्टि जन स्वरूपमें विपर्ययज्ञान रखते हैं कि वस्तुका स्वरूप तो है और कुछ और मान लिया जाता और कुछ तो वह ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है, क्योंकि उसमें जानकारी बिल्कुल विपरीत की गई है और इसी तरह भेदाभेद विपर्ययकी भी बात विपरीत ज्ञानमें चली कि जो परस्पर भिन्न हैं उन्हें तो मान लेते अभिन्न और जो अभिन्न है, एक है उसमें मान लेते भेद। जैसे रूप और द्रव्य, द्रव्यके मायने पुद्गल, वस्तु, जैसा कि लोगोंको दिखता है सो वहाँ रूपको और द्रव्यको परस्पर भिन्न मान लिया रूप अलग, द्रव्य अलग, लेकिन ये अभेदमें भेद मान बैठे, तो यह विपरीत बोध ही तो हुआ, इसी प्रकार जो भिन्न-भिन्न चीजें हैं उनको एक मान लेना यह भी विपरीत ज्ञान है, अनन्तानन्त परमाणु, अनन्तानन्त जीव और भी चेतन ये परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं, याने एक जातिका पदार्थ दूसरी जातिके पदार्थसे तो भिन्न है ही, मगर स्वजातीय भी अनेक पदार्थ हैं, परस्परमें भिन्न होते हैं, उन सबको एक कह डालते। सारे पदार्थोंका समूह एक ब्रह्म है यह क्या? भेदमें अभेदकी भावना। तो यह भी विपरीत ज्ञान हुआ ना, इसी तरह कारणविपर्यय भी कहा जा रहा।

जैसे एक उदाहरण दिया था प्रकृतिसे सारे संसारकी उत्पत्ति मानने का। तो है नहीं ऐसा, फिर भी मान रहे तो यह कारणविपर्यय कहलाया। इस तरह स्वरूपविपर्यय, भेदाभेद विपर्यय और कारणविपर्ययरूप जानकारी होनेसे ये सब ज्ञानविपरीत ज्ञान कहलाते हैं। प्रथम अध्यायमें उद्देश्य और पदार्थके जाननेके उपायोंका वर्णन है। अधिगमके उपायोंमें प्रमाण और नय ये दो मुख्य कुंजी बतायी हैं, जिसमें प्रमाणका वर्णन हो चुकनेके बाद नयनका वर्णन किया जाना चाहिए था, किन्तु ऐसा न कर प्रसंगवश प्रमाणके बाद ही एकदम प्रमाणाभास अथवा कुज्ञान का वर्णन करना पड़ा। जहाँ सम्यग्ज्ञानका वर्णन चल रहा था वहाँ थोड़ेसे ही शब्दोंमें विपरीत ज्ञानका वर्णन आ जाता है। तो बताया गया था कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन विपर्यय भी होते हैं। उसका कारण यह

है कि अज्ञानी जीवोंको सत् और असत्में भेदविज्ञात नहीं है। सत् को असत् कह दे, असत्को सत् कह दे, तो इसी भूलके तीन प्रकार बताये गए हैं स्वरूपविपर्यय, भेदाभेदविपर्यय और कारण विपर्ययकी बात चल रही है कि कैसे-कैसे कौन लोग पदार्थकी उत्पत्तिके कारण बतलाते हैं? इस प्रसंगमें एक मुख्य दार्शनिकने मंतव्यको बता दिया था कि अवक्तव्यसे समस्त जगत्की उत्पत्ति मानते हैं। बहुत कुछ विचार कर दिया गया।

कारणविपर्ययरूप कल्पनाका एक और उदाहरण अन्य कोई दार्शनिक कहता है कि जो कुछ दृश्यमान घट आदिक कार्य हैं उनका कारण तो परमाणु है, जो कि प्रतिनियत पृथ्वी आदिक जातिमें विशिष्ट है। कोई पार्थिव है, कोई जलकायिक है, कोई अग्नि वाला है, कोई वायु वाला है। ऐसे भिन्न-भिन्न जातिके परमाणु हुआ करते हैं। उन परमाणुओंसे घट-पट आदिक कार्योंके स्वरूपका लाभ होता है। कब? जब इस योग्य अदृश्य आदिकका सन्निधान हो जाये सो उनके परमाणुओंका समुदाय बनकर फिर उनसे अन्य घट-पट आदिक कार्योंका आत्मलाभ होता है।

इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि परमाणुको नित्य माना गया है, और परमाणु जो कि नित्य हैं उनसे कार्यका प्रारम्भ नहीं हो सकता, क्योंकि जिसमें कुछ भी विकार नहीं? कुछ भी परिणाम नहीं बनता, ऐसा परमाणु कैसे अन्य पदार्थोंका कार्य कर दे। तो नित्य परमाणुओंसे कार्यका प्रारम्भ नहीं होता। अगर कार्यका प्रारम्भ उनसे माना जाये तो वह नित्य नहीं ठहर सकता और फिर दूसरी बात यह है कि परमाणुओंका लक्षण है और ढंगका और कार्यभूत घट-पट आदिक पदार्थोंका लक्षण माना गया और ढंग का तो विजातीय परमाणुओंसे अन्य प्रकारके कार्यका प्रारम्भ कैसे बन जायेगा? और अगर कहो कि नित्य परमाणुओंसे भी घट-पट आदिक कार्य हो जाते हैं तब तो इन पदार्थोंमें छोटे बड़ेका भेद न रहना चाहिए। अब यहाँ जातिका भी प्रतिनियत नहीं बनता, क्योंकि भिन्न जाति वाले पदार्थोंका भी उत्पाद देखा जाता है। कैसे? देखो पृथ्वीके परमाणुओंसे पानी भी बन जाता। चन्द्रकान्तमणि अथवा अन्य ओला आदिक, तो भिन्न पदार्थोंसे भी कार्य बन जाता है। अगर कहे शंकाकार कि भाई जातीय पदार्थोंमें तो समुदाय मात्र ही कार्य है।

तो उसका उत्तर यह है कि फिर तो समान जाति वाले पदार्थोंमें भी कार्यका प्रारम्भ हो जाना चाहिए। यहाँ विचार चल रहा है इस बातका कि पदार्थका कारण तो निश्चय से खुद ही है। स्वयं ही उपादानमें अपने आपकी अवस्था प्रकट होती जाती है और निमित्त कारण अनुकूल बाह्य पदार्थ है और इस तरहसे समस्त जगत कार्योंकी उत्पत्ति चलाता जा रहा है, पर ऐसा न मानकर कोई दार्शनिक यह मानते हैं कि परमाणु है नित्य और उन परमाणुओंसे जगतके पदार्थोंकी उत्पत्ति हो रही है। इस विषयपर विचार करें तो विदित होगा कि परमाणु घट-पट आदिक पदार्थोंका कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि परमाणुओंको निष्क्रिय और नित्य माना गया है। तो जो स्वयं निष्क्रिय है और नित्य है उससे कोई कार्य नहीं बन सकता। वह कभी कर्ता नहीं हो सकता। यदि कोई कहे कि फिर तो आत्माका भाग्य कार्य हो जायेगा याने जिसका जैसा भाग्य है उसको वैसी चीज मिल जाती है, उसके

लिए वैसी चीज बन जाती है, तो जीवका भाग्य कारण हो जायेगा, सो यह भी बात उन दार्शनिकोंके उचित नहीं बनती। कारण यह है कि ये अदृष्ट आदिक गुणोंको भी निष्क्रिय मानते हैं। वह किस तरह कि अदृष्ट याने भाग्य, यह है आत्माका गुण और आत्मा है निष्क्रिय। तो जो निष्क्रियका गुण है वह भी निष्क्रिय है। तो जब भाग्य भी निष्क्रिय हो गया तो वह किसीका कर्ता कैसे बन सकता और फिर जो निष्क्रिय पदार्थ है वह अपनेमें भी किसी क्रियाका कारण नहीं बन सकता। तो इस तरह कारणविपर्ययरूपसे जानकारी जो रखते हैं उनके ज्ञानको सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जा सकता।

प्रत्येक सत्का स्वातंत्र्य और सत्के विकारमें निमित्तनैमित्तिक भाव अपरिचित रहनेसे मन्तव्योंके गड़नेकी विडम्बना कुछ लोग मानते हैं कि वर्णादिक परमाणुओंका समुदाय स्वरूप जो रूप परमाणु है, अतीन्द्रिय है वह ही जब इकट्ठा हो जाता है तो इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य बन जाता है और तब फिर वे घट पट आदिक कार्योंके स्वरूपलाभके कारण बन जाते हैं। शंकाकारका कहना कुछ यहाँ बल-सा रख रहा प्रतीत हो रहा है। इसका सिद्धान्त है कि दुनियामें रूप परमाणु अनन्त हैं, अतीन्द्रिय हैं और उन रूप परमाणुओंमें वर्णादिक परमाणु और मिले हुए हैं। ऐसे ये रूप परमाणु जब इकट्ठे हो जाते हैं तो इन्द्रियग्राह्य हो जाता है, जब तक न्यारे-न्यारे हैं तब तक भी इन्द्रियग्राह्य नहीं होते। जैन भी तो ऐसा मान लेते हैं कि जो एक परमाणु है उसका ज्ञान कोई नहीं करता, और वे ही अतीन्द्रिय परमाणु जब इकट्ठे मिल जाते हैं स्कंधरूपको धारण कर लेते हैं तो वे इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो जाते हैं। तो ऐसे ही यह रूप परमाणु भी समुदायरूपमें होकर यह इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो जाता है। और इन्द्रिय द्वारा ग्राह्यपनेका अनुभव करके फिर ये घट-पट आदिक कार्यकी उत्पत्तिके कारण बन जाते हैं।

इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी इस कारण युक्त नहीं है कि जो यह माना कि प्रत्येक रूप परमाणु वह अतीन्द्रिय है और उनसे मिलकर इन्द्रियग्राहीपना अनुभव कर फिर यह आगे कार्यरूप परिणाम जाता है, सो बतलाया यह कि प्रत्येक रूप परमाणु तो अतीन्द्रिय है और अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय मिलकर कितने ही समुदायरूपमें हो जाये उनसे भिन्न कार्य उनसे बन नहीं सकता, और जो कार्य होगा तो वह अतीन्द्रिय ही होगा। तो देखो रूप परमाणु अनन्त मिल गए, सो अनन्त मिलकर भी मानो कार्य बन गया तो वह कार्य अतीन्द्रिय ही रहा, इन्द्रियगोचर न हो गया। तो जब इन्द्रियगोचर कुछ हो ही न सकेगा तो फिर इन पदार्थोंमें यह सही है, यह झूठ है, यह प्रमाण है, यह प्रमाणभास है, ये सब निश्चय न हो सकेंगे और तब यह कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। तो जब कार्य नहीं है तो फिर कारण भी नहीं सिद्ध हो पाता। और भी बात सुनो जो रूप परमाणु आदिक माने जाते हैं वे सब क्षणिक हैं और निष्क्रिय हैं, जो क्षणिक हैं वे कार्यके उत्पादक नहीं बन सकते। जब वे रूप परमाणु अनन्त हैं तो उनकी शक्तियाँ उनके अपने आपमें हैं। किसी परमाणुकी शक्ति किसी अन्य परमाणुमें नहीं पहुंच सकती है। तो जब उनकी भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं तो उनका परस्परमें सम्बंध भी नहीं बन सकता। कोई कहे कि इन सब कारणपरमाणुओंका सम्बंध जुटानेमें, इकट्ठा करनेमें ईश्वरको कारण मान लिया जायेगा, सो भी बात नहीं सम्भव है। अन्य कोई पदार्थ

चेतन इन सबका सम्बन्ध नहीं बना सकते। इसलिए जब कारणपरमाणुओंका सम्बंध ही नहीं बन सकता तो दृश्यमान ये पदार्थ, यह कार्य कैसे सम्भव बन सकता है? तो इस तरह सत् असत्में विवेक न होनेसे मिथ्या ज्ञानियोंका अप्रमाण ज्ञान रहा करता है।

दर्शनमोहमें स्वरूपविपरीत दर्शन होनेसे ज्ञानोंमें विपर्ययता यह सब मिथ्या कल्पनाओंका ज्ञान मिथ्यादर्शन नामक प्रकृतिके उदयसे हो रहा है, सो जानना चाहिए। जैसे कि जिन मनुष्योंको कभी-कभी पित्त ज्वर हुआ हो, पित्तकी अधिकता होती है तो पित्तके प्रकोपसे वे आकुलित हो जाते हैं और जब पित्त प्रकोपसे आकुलित हुई इन्द्रियोंमें अन्य परिवर्तन हो उस समय ये इन्द्रियाँ थोड़ा जानतीं, खोटा जानतीं। तो पित्तोदयसे आकुलित जिनकी रसनाइन्द्रिय हो गई तो जैसे उस रसनासे विपर्ययज्ञान होता। कैसे? खाया मीठा, लगा कडुवा, तो इसी तरह मिथ्यात्व पित्तसे आकुलित चित्त वाले जीवोंका सत् असत्का विवेक नहीं रहता। और जब सत् असत्का विवेक नहीं रह पाता तो जो यह बात कही थी शंकाकारने पहले कि मिथ्यादृष्टिके ये तीन ज्ञान अज्ञान नहीं कहला सकते, क्योंकि रूपादिक विषयोंको जिस तरह सम्यग्दृष्टि देखता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी देख रहा है। फिर मिथ्यादृष्टियोंका ज्ञान कुज्ञान रहे और सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यग्ज्ञान रहे, यह कैसे हो जायेगा? तो यहाँ तक यह बताया गया कि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीवोंके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान विपरीत भी होते हैं तब इनके नाम हुए कुमति, कुश्रुत व कुअवधि।

नयोंके वर्णनका प्रसंग उक्त प्रकार प्रमाणके विषयमें वर्णन समाप्त हुआ, अब इस समय चारित्रिकी बात कहनी चाहिए, क्योंकि किसी न किसी रूपसे प्रथम अध्यायमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका वर्णन हुआ। अब सम्यग्ज्ञानके वर्णनके पश्चात् चारित्रिका वर्णन किया जाना चाहिए। तो चारित्रिका वर्णन न कर नयोंका वर्णन किया जा रहा है। चारित्रिका वर्णन तो आगेके अध्यायोंमें आयेगा। ६वें, १०वें अध्यायमें चारित्रिका वर्णन है। तो जब मोक्षका प्रकरण चलेगा तब यह बतलाया जायेगा कि यह आत्मा व्युपरतक्रिय नामक जब ध्यानको करता है और उससे आत्मबल प्रकट होता है तो वह आत्मबोध आत्मज्ञान, आत्मानुभूति, समस्त कर्म ईंधनको दहन करनेमें समर्थ होता है तो मोक्षके प्रकरणमें चारित्रिका वर्णन किया जायेगा। इस कारण यहाँ चारित्रिका वर्णन न करके नयोंका वर्णन कर रहे हैं, क्योंकि संकल्प यह किया गया था कि पदार्थके जाननेके उपाय दो हैं (१) प्रमाण और (२) तप। सो इस विज्ञानसे नयका वर्णन किया जाना तो कम प्राप्त है। यहाँ शंकाकार कहता है कि कोई जीव क्षायक सम्यग्दर्शन और केवलज्ञानसे सहित भी हो जाये तो भी क्यों नहीं उसी समय कर्मोंका क्षय हो जाता है? तो वही समाधान दिया जा रहा है यहाँ कि क्षायक सम्यग्दर्शन और क्षायक सम्यग्ज्ञान उत्पन्न भी हो गया तो भी व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामक ध्यान जब तक नहीं होता तब तक मोक्ष नहीं होता और वही व्युपरतक्रिया ध्यान उत्तम चारित्र कहा गया है। यदि उस सब चारित्रको यहाँ कहा जावे तो यह कह दिया और जब मोक्षका प्रसंग आनेको होता तो वहाँ भी कहना पड़ता, सो ग्रंथ गारव न हो जाये याने ग्रंथमें अप्रयोजन अधिक वर्णन न हो जाये इस कारणसे प्रमाणाभासका

यही कथन करनेके बाद चारित्रिका वर्णन नहीं किया गया, क्योंकि यहाँ चारित्रिका वर्णन करते तो यहाँ भी यह कहना पड़ता और मोक्षके प्रकरणमें भी कहना पड़ता, इसलिए मोक्षके प्रसंगमें ही चारित्रिका वर्णन कर देना ठीक है। यहाँ नयोंका वर्णन करना उचित है। क्योंकि संकल्प भी यही किया गया था कि पदार्थोंका अधिगम प्रमाण और नयोसे होता है। प्रमाणका वर्णन समाप्त हुआ, अब उसके अनन्तर नयोंका वर्णन किया जाता है। नय कौन होते हैं, कैसे होते हैं, इसका निर्देश करनेके लिए अब इस अध्यायका अंतिम सूत्र कहते हैं।

नैगमसंग्रहव्यवहारजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

नयके मूल दो भेदोंके आधार पर नयभेदोंका विस्तार नय ७ हैं नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्दनय, समभिरूढ और एवंभूत। नयका अर्थ है प्रमाणसे प्रकाशित अर्थात् ग्रहण किए गए पदार्थोंका अभिप्रायवश किसी विशेष का प्ररूपण करना सो नय है। नय प्रमाणसे ग्रहण किए गए पदार्थोंमें नय नहीं कहलाता। जैसे पदार्थों में अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदिक धर्म हैं, इन धर्मों सहित पदार्थोंके जो विशेष हैं, पर्यायें हैं, भेद हैं उनका प्रकर्ष रूपसे प्ररूपण करने वाला अर्थात् जिसमें दोष न आये इस ढंगसे दृष्टि लगाकर प्ररूपण करने वाला नय होता है। ऐसे नयके भेद नियत नहीं हो सकते। २-४-६-१० कितने ही लगाओ, संख्याते नय लग सकते हैं। जैसी दृष्टि वैसा ही प्ररूपण, उतने ही नय। और शब्दादिककी अपेक्षा से, परिणामकी अपेक्षासे अनगिनते नय कहे जा सकते हैं। शब्दकी अपेक्षासे संख्या अर्थ और भावकी अपेक्षा अनगिनते नय हैं, लेकिन बहुत तोड़ वर्णनसे भी तीर्थप्रवृत्ति नहीं चल सकती। और बहुत अधिक वर्णनसे बुद्धिमानोंको जो कुछ थोड़ी प्रज्ञा रखते हैं साधारण बुद्धिजनोंको उससे लाभ नहीं होता, उपकार नहीं होता। इसलिए न संक्षेपसे भेद बताना चाहिए और न विस्तारसे भेद बताना चाहिए, इस ही कारण इस सूत्रमें नयोंके ७ भेद कहे हैं, जिसके अन्तर्गत सभी प्रकारके नय शामिल हो जाते हैं। ऐसे नयके मूल भेद तो दो हैं (१) द्रव्यास्तिकनय, (२) पर्यायास्तिकनय। द्रव्य है इस प्रकारकी बुद्धि जिसके होती है याने द्रव्यका अस्तित्व जिसकी बुद्धिमें होता है याने उत्पत्ति सद्भाव इस प्रकार विकार रूपसे जिसकी बुद्धि होती है याने उत्पाद व्ययसे रहित केवल द्रव्य ही दृष्टिमें रहे, उससे अन्य भाव, विकार या अभाव न रहे, ऐसे से आशयको द्रव्यास्तिकनय कहते हैं, और पर्याय ही है, ऐसी बुद्धि जहाँ है, जहाँ उत्पाद, भाव विकार ये सब मनन देखे जाते हों, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ द्रव्य नहीं है, क्योंकि पर्यायको छोड़कर द्रव्य नहीं पाया जाता। इस तरह पर्यायमें ही मति है, वह पर्यायास्तिकनय है याने द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, गुण कर्मको देखनेकी दृष्टि जहाँ नहीं है उसे द्रव्यास्तिकनय कहते हैं। द्रव्यास्तिकनयमें केवल अनादि अनन्त एकस्वरूप द्रव्य ही दृष्टिमें होता है। गुण और कर्म ये अवस्था और भेद हैं, ये द्रव्यार्थिकनयके विषय नहीं हैं और पर्यायार्थिकनयमें पर्याय ही जिसका प्रयोजन है। जैसे रूपादिक या क्रिया, यही जिसके विषय हैं, प्रयोजन हैं उससे अन्य कुछ द्रव्य नहीं, इस प्रकारकी बुद्धिको पर्यायार्थिकनय कहते

हैं। पर्यायका अर्थ है परि समंतात् आयः पर्यायः याने जो चारों ओरसे आता है, आय है, होना है वह पर्याय है, और द्रव्यका अर्थ है जो परिणमनको प्राप्त करे सो द्रव्य है। तो ऐसा द्रव्य ही जिसका अर्थ है याने कारण कार्य है, सर्वस्व द्रव्य ही जिस दृष्टिमें है उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं, और पर्याय ही जिसका प्रयोजन है याने कार्य ही जिस दृष्टिमें है, भूत-भविष्यमें रहने वाला द्रव्य नहीं है इस दृष्टिमें वह सब पर्यायार्थिकनय है। सो इन नयोंके ७ भेद होते हैं नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्दनय, समभिरूढ़ और एवंभूत। नयके अनेक प्रकारसे बनते हैं, पर मूल बात यह समझनी चाहिए कि अभेद और भेदके आधार पर ही समस्त नय होते हैं। फिर इस अभेद और भेदके आधार पर नयोंके कितने ही ढंगमें प्रकार बनाये जायें, उनमें कुंजी यह है कि कोई नय भेदकी ओर दृष्टि करा रहा है तो कोई नय अभेदकी ओर दृष्टि करा रहा है।

नयके भेद बतानेके तीनों प्रकारोंमें भेदनय व अभेदनयका दर्शन नयके भेद बतानेके ये तीन प्रकार हैं एक तो साधारणपद्धति, आगमपद्धतिसे जिसके भेद किए ही गए हैं नैगम, संग्रह, आदिक और एक होती है बुद्धिशब्दार्थपद्धति याने ज्ञाननय, अर्थनय, शब्दनय जो ज्ञानकी मुख्यतासे याने कल्पनारूपसे केवल जाननरूपमें ही ग्रहण किया जाये सो है ज्ञान नय और जो पदार्थ का परिचय किया जाये वह है अर्थनय, और शब्दनयकी दृष्टिसे निर्णय बने वह है शब्दनय। और एक पद्धति है अध्यात्मपद्धति। इस पद्धतिमें परमशुद्ध निश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, अशुद्धनिश्चयनय और व्यवहारनय ये चार भेद किए गए हैं। तो कोई भी ढंगसे प्रकार हों नयोंके उनमें भेद और अभेद ये सबमें पाये जाते हैं। जैसे नैगममें अभेद है और संग्रहमें भेद है और व्यवहारकी दृष्टिसे अभेद है, व्यवहारमें भेद है और ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें अभेद है, ऐसे ही परमशुद्धनिश्चयनय आदि हैं, शुद्धनिश्चयमें भेद किया गया, क्योंकि शुद्धपर्यायका ग्रहण किया, मगर व्यवहारकी तुलनामें अभेद है, क्योंकि व्यवहार दो द्रव्योंको विषय करता है और शुद्धनिश्चयनयमें द्रव्य केवल एक ही विषयभूत है और अशुद्धनिश्चयनय भी अभेद है और व्यवहारकी तुलना में, किन्तु द्रव्यके पर्यायको देखने पर भेद हो गया। तो नयोंमें मूलमें कुंजी ये ही दो हैं कि कोई नय भेदग्राही है और कोई नय अभेदग्राही है। तो नैगमनय किसे कहते हैं? नैगमनयका अभिप्राय है सत् और दोनोंको मिला देना, ऐसा अभेद सत्में असत् आ गया।

जैसे कोई रसोईघरमें अग्नि ही जला रहा और पूछता है कोई कि क्या कर रहे हो तो वह कहता है कि रोटी बना रहे। तो वहाँ सत् तो केवल अग्नि जलानेकी बात है और रोटी वहाँ सत् है, मगर सत् असत् दोनों को मिलता है, ऐसा अभेद है? यह नय एक व्यापक नय है और संग्रहनय में केवल सत्को ग्रहण किया है, असत्को नहीं लिया। व्यवहारनयने उस सत्के भी भेद कर दिये। इस तरह सत्के भेद करते जायें तो सब भेदग्राही हैं। तो मूल नाम आदिनय और भेदनय है, क्योंकि वस्तु तो एक अखंड है, इसलिए अभेदकी बात तो एक सहज बात बनी, मगर वस्तु परिणममें बिना रहती नहीं। हैं, तो परिणमन होगा अवश्य। तो जो परिणमन है सो भेदरूप है। यों वस्तुमें अभेद और भेद दोनों

ही धर्म पाये जाते हैं। तो अभेदग्राही अभिप्रायको कहते हैं अभेदनय और भेदग्राही अभिप्रायको कहते हैं भेदनय।

नैगमनय आदिक सप्तनयोंमें भेद अभेदका दर्शन तो नैगमनयके क्या विषय हुए? पदार्थको संकल्प मात्रसे ग्रहण करना सो नैगमनय है। जो निगममें होवे, कल्पनामें होवे उसे कहते हैं नैगमनय, याने पदार्थको संकल्पना मात्रसे ग्रहण करना। जैसे यह अमुकका घर है अथवा यह पंसेरा है, यह आधा सेरा है तो यह भेद भी सत् पदार्थमें नहीं आता। उसमें अभिप्रायसे यह बात थोप दी कि इसमें आधा सेरा है, यह पंसेरा है। तो नैगमनय कल्पना मात्रसे पदार्थको ग्रहण करता है। तो नैगमनय भूत और भावीको मिलाता, अभेदाभेदको मिलाता, सत् असत्को मिलाता, इस तरह मिलकर जाने सो नैगमनय है। लोकमें व्यवहार नैगमनयके आधार पर बहुत होता है, क्योंकि हर जगह संकल्पकी मुख्यता रहती है। अब यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि यह तो भावी संज्ञाका व्यवहार है, नैगमनय तो नहीं हुआ। जैसे रसोई बनाना है, बना नहीं रहे अभी, लकड़ी कंडा आदिक सामान रोटी बनानेके लिए रख रहे मगर भविष्यमें काम होने वाला है उसका व्यवहार किया जा रहा है। जैसे कोई एक ढाई सेरका लकड़ीका माप बनाया, जिसमें गेहूं भरें तो ढाई सेर आ जाये तो लोग पूछते हैं कि क्या है? तो कहते हैं कि यह आधा सेरा है। एक संकल्प कर लिया कि इसमें ढाई सेर अनाज आयेगा। तो यह भावोंमें होने वाली जो चीज है उस संज्ञाके नामसे व्यवहार है, इसमें नैगमनयकी क्या बात आयी? ऐसी शंका हुई। उसमें समाधान करते हैं कि भावी संज्ञाका व्यवहार अलग है और नैगमनयका विषय अलग है, क्योंकि नैगमनय तो भूतमें भी होता है और भूत द्रव्य तो अब मौजूद नहीं है। जैसे जो बात गुजर गई उसे अब कहा, जैसे आज दीवाली है, तो दीवालीका दिन गुजरे तो ढाई हजार वर्ष हो गए, अब आज कह रहे कि आज दीवाली है। तो पहले जो दिन गुजरा दिवालीका वह तो नहीं है, भूत द्रव्यका सन्निधान नहीं है फिर वहाँ कैसे सम्बन्ध बना? भावी संज्ञाका व्यवहार बना। तो नैगमनयका विषय कोई सद्भूत चीज नहीं है, जिससे भावी संज्ञाका व्यवहार बने। एक संकल्प मात्रको ग्रहण किया है। संक्षेपमें ऐसा समझें कि बात दो हैं सत् असत्। असत् कोई चीज नहीं होती, पर इसमें सत् नहीं आया। तो सत् और असत् दोनोंको अभेद करके बना नैगम। केवल सत्का संग्रह, उससे बना संग्रहनय। अब सत्के भेद, उससे बनेगा व्यवहारनय और फिर उसके भी भेद कर पर्यायको देखा तो ऋजुसूत्रनय।

अब देखते जाइये कि ये नय उत्तरोत्तर सूक्ष्म-सूक्ष्म होते जा रहे हैं। अब ऋजुसूत्रनयके विषयमें अनेक शब्दोंको बोला जाता था, अब उसे एक शब्दसे बोला तो हो गया शब्दनय। जैसे पुरुष, मनुष्य, जन कई नाम हैं। किसी भी नामसे बोलें। तो ऋजुसूत्रनय तो स्वीकार कर लेना था कि किसी भी शब्दसे बोलें, चीज बोलना चाहिए, पर शब्दनय कहता है कि अगर कोई मनुष्य आलसी है तो उसे मनुष्य नहीं कह सकते। कोई पुरुष विवेकरहित है तो उसका नाम मनुष्य नहीं हो सकता। तो मनुष्यका अर्थ है श्रेष्ठ मन वाला। पुरुषका अर्थ है पुरुषार्थ। तो शब्दके भेदसे इनमें भी भेद कर देवे

शब्दनय। और एक शब्दके अनेक अर्थ होते, उनमेंसे किसी एक अर्थको ही ग्रहण करे तो समभिरूढनय और जिसकी बात कही जा रही जिस क्रियाकी उसी क्रियामें उसका नाम लेवे तो एवंभूतनय। तो इस तरह उत्तरोत्तर ये नय सूक्ष्म-सूक्ष्म होते चले जाते हैं। तो अभेद और भेद बस इनका विन्यास है। समस्त नयोंके अन्दर। इससे अपनेको सुगमता क्या मिलती है कि प्रमाणसे एक बार पदार्थको जाना गया, फिर और विशेष निर्णय करनेके लिए नयों का सहारा लिए, विशेष विशेष जानते चले। इस तरह नयके ये ७ भेद बताये गए हैं।

बुद्धिशब्दार्थपद्धतिके नयोंका विवरण अन्य प्रकारसे भी नयोंके भेद होते हैं जिसका अभी विवरण किया गया है संक्षेपमें कि ज्ञानमय, शब्दनय, अर्थनय। जैसे भगवान कहा तो मनमें संकल्प बना, वह है ज्ञानभगवान और भगवान ये शब्द बोला तो यह हुआ शब्दनय, और जो परमात्मारूप भगवान है वह अर्थभगवान है। इस तरह ये तीन नय सबमें मिलेंगे। तो समझो कि निश्चयसे न तो शब्द भगवानकी उपासना कोई करता, न अर्थभगवानकी उपासना करता, किन्तु ज्ञानभगवान भक्तकी पर्याय है, इस ज्ञानभगवानसे ही उपासकका लगाव हो सकता है। ज्ञानमयमें तो नैगमनय आता है, क्योंकि नैगमनय कहते हैं संकल्पमात्रसे पदार्थको ग्रहण करने वालेको। तो संकल्प ज्ञानका ही तो अवयव है। तो ज्ञाननय मायने नैगमनय, शब्दनय मायने शब्दनय, समभिरूढ और एवंभूत, क्योंकि इन तीन नयोंका शब्दकी विधिसे अर्थ होता है, और अर्थनय मायने हैं संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्रनय। इस तरह ज्ञाननय, शब्दनय, अर्थनयमें ७ नय आ जाते हैं। ज्ञाननय तो ज्ञानकी वजहसे है तो उनकी मुख्यता नैगमनयमें है और अर्थनयमें पदार्थकी मुख्यता है। तो संग्रहनयमें पदार्थ है, व्यवहारनयमें पदार्थ है, उन्हींका संग्रह पदार्थमें यहाँ किया। ऋजुसूत्रनयमें भी पदार्थ है, क्योंकि पर्यायमुखेन पदार्थको जाना। इस तरह ये तीन नय बताये गए।

अध्यात्मपद्धतिसे नयोंके प्रकारोंका विवरण अब इसके बाद एक पद्धति समझिये अध्यात्मपद्धति। अध्यात्मपद्धतिमें मूल दो नय हैं अभेदनय, भेदनय। जो अभेदको ग्रहण करे उसे कहते हैं अभेदनय। जो भेदको ग्रहण करे सो भेदनय। इस आधार पर निश्चयनय तो अभेदनय है और व्यवहारनय भेदनय है। यह स्थूलदृष्टिसे कह रहे हैं। निश्चयनयके तीन भेद हैं (१) परमशुद्धनिश्चयनय, (२) शुद्धनिश्चयनय, (३) अशुद्धनिश्चयनय। परमशुद्धनिश्चयनयके मायने गुणभेद नहीं, पर्यायभेद नहीं, किन्तु अनादि अनन्त एकस्वभाव रूप पदार्थको देखना। आत्मा तो अभेद ही है। शुद्धनिश्चयनयका अर्थ है कि शुद्ध पर्यायको देखना, मगर वहाँ निमित्त आदिक न निरखना। शुद्ध पर्याय है, द्रव्यकी है, वह द्रव्यसे ही प्रकट हुई है। द्रव्यमें है याने उसका षट्कारकपना उस ही एक पदार्थमें लगता हुआ जाने तो शुद्धनिश्चयनयका है। जैसे भगवानका केवलज्ञान, प्रभु केवलज्ञानी हैं। तो अब उसे इस तरह देखना कि प्रभुकी स्वाभाविक पर्याय है, प्रभुसे हुई है, प्रभुने की है, प्रभुकी ही ज्ञानसाधनासे हुई है, उसका फल प्रभु ही पाते हैं। प्रभुके प्रथम केवलज्ञानके बाद द्वितीय केवलज्ञान हुआ है और प्रभुकी आत्मामें ही यह पर्याय है। इस तरह शुद्ध आत्माकी पर्यायको उस ही द्रव्यसे सम्बंध रखते हुए निरखें तो

शुद्धनिश्चयनय है। अब यहाँ यह समझनेकी बात है कि अभेद ढंग है ना इसमें कि शुद्ध आत्माकी यह पर्याय है, वहींसे प्रकट हुई है, वहीं है, इस तरह एक अभेद नहीं किया गया, इसलिए तो निश्चयनय है और चूंकि द्रव्य और पर्यायको भेद कर डाला, इसलिए व्यवहारनय हो जाता है। शुद्धनिश्चयनय व्यवहारनय बन जाता है, तब यह दृष्टि देते हैं कि इसमें तो इतने भेद किए गए। परमशुद्ध निश्चयनयका जो विषय है उसकी अपेक्षासे तो शुद्ध निश्चय व्यवहार है। अशुद्ध निश्चयनय अशुद्ध पर्यायको देखता, मगर उस द्रव्यके भेद कर देखता। जैसे अशुद्ध जीवकी रागपर्याय। यह जीव रागी है। जीवको ही राग हुआ, जीवमें राग हुआ, जीवके ही परिणामोंसे रोग हुआ, जीवके लिए राग हुआ। सब कुछ जीवमें ही उस राग पर्यायकी बात दिखी। वहाँ निमित्त न दिखा कि के उदयसे हुआ तो वह शुद्धनिश्चयनय है। और जहाँ निमित्त दिखा कर्मका उदयका निमित्त पाकर राग पर्याय हुई तो यह व्यवहार बन गया, क्योंकि जहाँ दो द्रव्योंकी दृष्टि हुई तो वह व्यवहार कहलाता है। तो यों परमशुद्ध निश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, अशुद्धनिश्चयनय ये तीन तो निश्चयनय हैं और इसकी पद्धति अभेद विधि है। और जहाँ दो द्रव्य या एक द्रव्यका दूसरे पर प्रभाव जैसी बात, निमित्त आदिक कथन यह सब व्यवहारनय कहलाता है। तो इन नयोंसे वस्तुका परिचय हुआ करता है। आत्मा कैसा है, कैसा बनता रहता है, यह सब परिचय नयोंके ज्ञानसे बनता है। अब नैगम आदिक जो ७ नय हैं उन ७ नयोंका इन अध्यात्मनयोंसे मेल किया जाये तो अभेद विधिसे जाना गया तो नैगम संग्रह व्यवहार यह निश्चयनयमें गर्भित होगा, और भेदविधिसे जैसे व्यवहारनय और व्यवहारनयमें गर्भित होगा। ऋजुनय शब्दनय, समभिरूढनय, एवं भूतनय ये व्यवहारमें भी गर्भित होते और कोई अभेद विधि बन जाये तो निश्चयनयकी भी झलक होती है।

नैगमनय व संग्रहनयका एक अध्ययन सूत्रमें कहे गये ७ नयके पदार्थोंके अधिगम करनेके भले उपाय हैं। इनको नैगमनय तो संकल्पसे ग्रहण करता जिसे आग ही सिलगा रहे हैं, और कोई कहता कि क्या करते? तो कहते कि रसोई बनाते? रोटी बनाते। इसको भावी संज्ञाका व्यवहार नहीं कह सकते। जैसे कोई कहे कि राजाका पुत्र है और उसे कोई राजा कहता है तो चूंकि आगे राजा होगा, इसलिए उस कुमारमें राजाका व्यवहार है, ऐसा नैगमनयका विषय नहीं है, क्योंकि वैसे तो राजपुत्र मौजूद है जिसमें कि भावी संज्ञाका व्यवहार है, पर यहाँ तो कुछ मौजूद ही नहीं है। नैगमनय में न चावल रखे, न रोटी रखी, लकड़ी जला रहे और फिर उसमें व्यवहार है तो केवल संकल्पका व्यवहार है, इसलिए नैगमनयका विषय अलग है। संग्रहनयमें सर्व पदार्थोंका संग्रह है। अपनी जातिका विरोध न करके सब पदार्थ आ जायें, वह संग्रहनय है। जैसे कह दिया सत् तो सत्त्वके नातेसे सब पदार्थ आ गए। द्रव्य द्रव्यके नाते सब पदार्थ आ गए। चाहे घट हो, पट हो, जीव हो, धर्म, अधर्म, आकाश सभी सत् हैं। अब संग्रहनयमें दो किस्म होते हैं एक तो होता है परसंग्रह याने जिसको भेद नहीं, पूर्ण संग्रह कहो। जैसे सत् द्रव्य अर्थ बस यह ही शब्द है जिससे कि सबका संग्रह हो जाता है और दूसरा संग्रहनय है अपरसंग्रह। जैसे सत्, उसके दो भेद हैं (१) जीव और (२) अजीव। अब जीव यह

अपरसंग्रह बन गया। मायने जीवमें सब जीव तो आ गए, मगर सभी चीज नहीं आयी, इसे कहते हैं अपरसंग्रह। एक परसंग्रह, एक अपरसंग्रह।

अब भेद करते जायेंगे तो भी भेदके अन्दर भी संग्रह जुड़ा रहता है। वह अपरसंग्रह। जैसे जीवके दो भेद हैं (१) संसारी और (२) मुक्त। तो यह तो हो गया व्यवहार। जीवके आगे तो हो गया व्यवहार, क्योंकि उसके दो भेद किए संसारी और मुक्त, अगर अब संसारी अकेला ही देखे तो यह हो गया संग्रहनय मायने संसारी जीवमें भी बहुतसे जीव हैं। जैसे संसारी दो तरहके हैं त्रस और स्थावर तो त्रस और स्थावर ये दो नाम रखा तो संसारीके आगे व्यवहार बन गए, क्योंकि भेद कर डाला संसारी के। अगर एक उसमेंसे त्रस ले लिया तो त्रस तो संग्रह बन गया, किन्तु त्रसमें अनेक त्रस आ गए। इस तरह संग्रहनय, अपरसंग्रहनय बनते चले जाते हैं। पूर्ण संग्रहकी बात देखिये, सत्, ऐसा कहनेसे सभी पदार्थ आ गए।

सत्का स्वयं सहज स्वरूप सत्त्व सत्के विषयमें एक दार्शनिक का ऐसा मंतव्य है कि जगतके पदार्थ अपने आप सत् नहीं हैं, किन्तु इनमें सत्ता जुड़ी तो ये सत् कहलाये। सत् मायने “है” तो ये पदार्थ जब सत् हैं तो इनमें सत्ताका सम्बन्ध हुआ। अब हर एक आसानीसे समझ सकता है कि पदार्थमें क्या सत्ताका सम्बन्ध हुआ करता है? पदार्थकी सत्ता है यह तो व्यवहारसे कहते हैं, पर है तो स्वयं सत् कोई पदार्थ है तो अपने आप है। कहीं ऐसा नहीं है कि उसमें सत्ताका सम्बन्ध जुड़े तब वह सत् कहलाये। जैसे मनुष्य है, अब मनुष्यमें मनुष्यत्व हुआ करता। तो क्या ऐसा है कि मनुष्यत्वका उसमें सम्बन्ध जुटाये तब मनुष्य कहलाये? अरे वह है मनुष्य तो मनुष्य है ही अपने आप। उसका जो विचार है, भाव है वह मनुष्यत्व है। तो ऐसे ही सब पदार्थ खुद सत् हैं। कहीं यह नहीं कि पदार्थमें सत्ताका सम्बन्ध लगाया गया हो तो सत् कहलाये। अगर पदार्थमें सत्ताका सम्बन्ध लगानेसे सत् कहलाये तो यह बतलाओ कि जब सत्ताका सम्बन्ध न हुआ था उससे पहले यह सत् था या नहीं? अगर पहले सत् था तो सत्त्व था ही, फिर सत्ताका सम्बन्ध जोड़नेकी क्या जरूरत रही? अगर कहो कि सत् न था तो सत्ताका सम्बन्ध किससे जोड़ना? वह तो था ही नहीं। तो जो चीज है वह स्वयं है, अपने आप है, कोई सत्ताका सम्बन्ध जोड़नेसे नहीं है। कितने सत् हैं? अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य। ये सत् अपने आप सत् हैं, अनादिसे हैं। कभी नष्ट न होंगे। अच्छा फिर थोड़ा यह भी सोच सकते कि सत्ताका सम्बन्ध जुड़ जाये तो उससे सत्तावान कहना चाहिए, न कि सत् कहना चाहिए, जैसे धनका सम्बन्ध जुड़ गया तो उसे धनवान कहते हैं न कि स्वयं धन कहते हैं।

जैसे गायका सम्बन्ध हो गया तो गाय वाला कहेंगे, गाय न कहेंगे मनुष्यको, ऐसे ही ये पदार्थ अगर सत्ताके मेलसे सत् कहलायें तो सत्ताका मेल होनेसे सत्तावान कहना चाहिए, न कि सत्। तो सभी पदार्थ सत् हैं, कोई सत्ताके सम्बन्धमें सत् नहीं है।

सत्के छहों साधारणगुणोंकी सत्से अनन्यता यहाँ यह बात समझनी कि जो सत् होता है वह स्वयं सत् है, इसका नाम अस्तित्व। गुण यह गुण पदार्थका ही है और अपने स्वरूपसे सत् है, पररूपसे सत् नहीं, क्योंकि व्यक्ति तो अनन्त हैं, जीव अनन्त हैं, पुद्गल अनन्त हैं। तो प्रत्येक जीव अपने स्वरूपसे है, दूसरेके स्वरूपसे नहीं है। प्रत्येक परमाणु अपने स्वरूपसे है, दूसरेके स्वरूपसे नहीं है। मगर सब सत्ताकी दृष्टिसे सत् कहलाते हैं। कहीं ऐसा नहीं कि सारे पदार्थ मिलकर कोई एक सत् कहलाते हों और फिर ये उसके अनुकूल हों। प्रत्येक पदार्थ जुदे-जुदे हैं, पूर्ण पूर्ण सत् हैं। उनका काम उन ही में अपनेमें अकेलेमें होता है और उनको जाति अपेक्षासे कह दिया कि ये सब सत् हैं। तो जो सत् होता, जो पदार्थ होता वह अपने स्वरूपसे सत् है, पर रूपसे सत् नहीं। जो पदार्थ होता वह निरन्तर परिणमता रहता है। कोई ऐसा समय नहीं हो सकता कि जिस समय कोई परिणमन न हो। कोई सा भी पदार्थ हो, प्रतिसमय वह परिणमता रहेगा। तो यों अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व गुणकी बात आयी। अब आगे चलें तो प्रत्येक पदार्थ अपने रूपसे परिणमता है, पररूप से नहीं परिणमता। जीव है वह अपने ही चैतन्यरूपसे परिणमेगा, दूसरेके चेतनसे न परिणमेगा, पुद्गल आदिकके स्वरूपसे न परिणमेगा। यह है उसका अगुरुलघुत्व गुण। और सत् जितने होते हैं चाहे एकप्रदेशी हों, चाहे अनेकप्रदेशी हों, चाहे अनन्तप्रदेशी हों। प्रदेश बिना पदार्थ हो ही नहीं सकता। उसका कुछ निजी क्षेत्र तो है। तो प्रत्येक पदार्थ प्रदेशवान होता है और जब प्रदेश है तो प्रमेय होता। जो है वह प्रमेय है, श्रेय है, जाननेमें आता है। जो नहीं वह क्या जाननेमें आये? जो है ही नहीं, वह कभी जाननेमें आ ही नहीं सकता। है ही नहीं। क्या है जानना? भले ही ऐसा लगता कि जैसे मानो गधेके सींग तो नहीं होते, मगर जाननेमें आ जाते। कभी-कभी तो कल्पनामें दिखते हैं गधा है, सींग बैठाल लिया अपनी कल्पनासे उसके सिर पर तो ऐसा कुछ भी सोचा जाये, वहाँ सर्वथा असत् कुछ नहीं सोचा जा रहा। सींग तो होते हैं दुनिया में, बस उसकी कल्पना कर ली। जो कुछ है ही नहीं उसकी कल्पना ही नहीं उठ सकती। न उसे कोई शब्द ही हुआ करते। तो जितने सत् हैं, जो पदार्थ हैं वे प्रमेय हुआ करते हैं। भले हो यह बात है कि हम लोगोंको छोटा ज्ञान है तो हम सत्को नहीं जान सकते, मगर जो सत् है वही जाना जा सकता है, अन्य कुछ नहीं, यह नियम समझना है, यह बात प्रमेयत्व गुण बतलाती है तो इस तरह जो भी पदार्थ हैं उस पदार्थमें ६ साधारण गुण होते हैं अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व और प्रमेयत्व। तो अभिन्न ६ गुण सहित पदार्थ होते हैं और वे पदार्थ सब सत् कहलाते हैं। तो एक सत् ऐसा कहनेमें सबका संग्रह हो गया। यह हुआ संग्रहनय।

नयोंके विषयकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मताके प्रकरणमें नैगम व संग्रहनयका हृदय एक बात और समझनी है कि इन ७ नयोंमें पहला नय तो स्थूल है, दूसरा नय उससे सूक्ष्म है, तीसरा उससे सूक्ष्म है, इस तरह सूक्ष्म-सूक्ष्म होते जाते हैं एवंभूतनय तक। तो ये स्थूल कैसे स्थूल हैं कि उसे सत् और असत् दोनोंका मूल कर दिया। सर्वथा असत्का मेल नहीं होता, किन्तु जो वर्तमानमें नहीं विद्यमान

है उसका और जो वर्तमानमें विद्यमान है उसका मेल कर दिया। जैसे चावल धो रहे हैं और कह दिया कि भात बना रहे हैं या आटा गूँथ रहे और कह दिया कि रोटी बना रहे, तो उस समय अभी रोटी तो बनी नहीं, रोटी पर्याय तो आगेकी है, और वर्तमानमें आटा है तो आटामें रोटीका मेल बना दिया कहनेमें कि रोटी बना रहे। तो सत्में असत्का मेल किया, यह तो हुआ नैगमनय। अब उसमेंसे केवल सत् सत्को ग्रहण करें, असत्को छुवें ही नहीं तो हो गया संग्रहनय। तो सूक्ष्मविषय हुआ इसमें। नैगमनयसे तो सत् असत् दोनों ग्रहणमें आये और संग्रहनयसे सिर्फ सत् ग्रहणमें आया व्यवहारनयसे सत्का भी भेद करेंगे। जैसे सत्में चेतन अचेतन दो भेद हैं तो वे सूक्ष्म बन जायेंगे। इस तरहसे ये नय उत्तरोत्तर सूक्ष्म बनते चले जाते हैं।

अब इसमें अनेक दार्शनिक तो ऐसे हैं कि जो एक सत् ही ब्रह्म है याने सारा जगत एक सत् है, उसे ब्रह्मरूप कहते। कोई ज्ञानरूप कहते, कोई शून्यरूप कहते। कोई कहते कि एक ही है, यह संग्रहनयका एकान्त है। कैसे एकान्त किया कि वास्तविकता तो यह थी कि चीजें तो अनेक हैं और वे अनेक चीजें एक जातिकी होनेसे एक कहलाती थीं जैसे जीव। जीव अनन्त हैं, वे सब अनन्त जीवत्वके नातेसे जीव कहलाते हैं। जैसे गेहूँका ढेर पड़ा है तो गेहूँ तो अनेक हैं, पर गेहूँ गेहूँकी जातिसे उस सारे ढेरको एक कह देते हैं। यह गेहूँ किस भावका है, और हैं गेहूँ उसमें बहुत, मगर एकवचनका प्रयोग करते हैं। तो ऐसे ही संग्रहनय अनेक चीजोंका संग्रह करता है, न कि सब एक ही हैं। जो लोग मानते हैं कि सब कुछ एक ब्रह्म है उन्होंने संग्रहनयका एकान्त किया। जो कि स्याद्वादसे विरोध है। संग्रहनय तो अनेक व्यक्तियोंका एक जाति रूपसे संग्रह करता, ऐसा अगर देखें तब तो सही है, कह दें एक ब्रह्म, क्या हर्ज है, मगर जाति अपेक्षा कहीं तो सही है और ऐसा मान लें कि सब कुछ एक ही ब्रह्म है तो दूसरा कुछ है ही नहीं अन्य, तो यह तो केवल एक स्वप्नकी बात है, झूठ है, मिथ्या है। तो यह मंतव्य ठीक न रहा। स्याद्वाद विधिसे समझनेसे सारे मंतव्य सही हो जाते हैं और स्याद्वादको छोड़ दें तो सब मिथ्या हो जाते हैं। तो संग्रहकयने अनेक सत्का संग्रह किया।

नयोंकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मताके प्रकरणमें व्यवहारनयका हृदय अब द्रव्यार्थिकनयका तृतीय भेद व्यवहारनय है उसका वर्णन करते हैं। व्यवहारका अर्थ है कि अवहार, वि मायने विधिपूर्वक, अवहार मायने अवहरण करना याने संग्रहनयसे विधिपूर्वक अवहरण करना सो व्यवहार है। संग्रहनयसे जिन अर्थोंका ग्रहण किया गया था उनके भेदरूपसे जानकारी करना यह व्यवहार कहलाता है। यह व्यवहारनय पर्यायार्थिकनय नहीं है, द्रव्यार्थिकनय है, इसलिए पर्यायकी प्रधानतासे इसे नहीं जाना जा रहा, किन्तु जाना जा रहा है द्रव्यकी प्रधानता से, किन्तु अवहरण किसी न किसी अंशमें पर्यायको किए बिना नहीं होता, पर व्यवहारनयकी दृष्टि द्रव्यपर है। संग्रहनयसे ग्रहण किए हुएका विधिपूर्वक अवहरण करना, इसमें विधिका क्या मतलब है, याने संग्रहनयसे जो ग्रहण किया गया पदार्थ है वही आनुपूर्वी रूपसे उसका व्यवहार बन सके, इस तरहकी विधि होती है। जिस सर्वसंग्रहनयने अर्थात्

परसंग्रहनयने सत्का ग्रहण किया था। अब सत् इतना ही मात्र कहा, उसमें विशेषकी अपेक्षा न रहे तो उससे व्यवहार तो नहीं बन सकता है। प्रयोग न होगा, काम नहीं होगा, इस कारणसे व्यवहारका आश्रय किया जाता है। तो उस सत्के विशेष समझनेके लिए दो रूप रखे द्रव्य और गुण। यहाँ सत् नाम है द्रव्य गुणका अभेद एक भावरूप सत् और उस सत्का जो द्रव्य और गुण भेद किया है तो उसमें द्रव्यके मायने तो है एक अन्वयरूपतत्त्व और गुणके मायने हैं अन्वयशक्तिरूप तत्त्व। तो संग्रहनय जहाँ सत्को विषय करता है वहाँ द्रव्य और गुणकी चर्चा हो तो व्यवहार है। अब द्रव्यगुण में से एक द्रव्यको एक इकाईमें रखा जाये याने संग्रहसे आक्षिप्त किए गए द्रव्यके द्वारा याने जिसमें जीव अजीवकी विशेषता न लगाई जाये उस विशेषताकी अपेक्षाके बिना उस संग्रहनयका ग्रहण किये गये द्रव्यके द्वारा भी व्यवहार नहीं बनता। तब उस जीवका विधिपूर्वक अवहरण करना, भेद करना कि वे द्रव्य जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य दो प्रकारके हैं, ऐसे दो प्रकार कर लेनेसे अब इसका व्यवहार बनने लगता है। अब जीव और अजीवका संग्रहनयसे ग्रहण किया। यह संग्रहनय जिस आशयसे ग्रहण किया गया उस जीव अथवा अजीवसे भी व्यवहार नहीं बनता। तो फिर जीवके भेद किए जायें, देव नारकी तिर्यच मनुष्य अथवा अजीवके भेद किए जायें घट-पट आदिक तो लो अब उसके अनुकूल व्यवहार बनने लगा और लो यों व्यवहार आश्रय हो गया। चीज वही है। विशेषकी अपेक्षा न हो तो व्यवहार नहीं बनता। विशेषकी अपेक्षा बन जाये तो व्यवहार बनता। जब तक विशेषकी अपेक्षा नहीं तब तक वह संग्रहनयका विषय है और जहाँ विशेषकी अपेक्षा हुई कि व्यवहारनयका विशेष होता है। अब नयका निक्षेपोंके साथ कैसा मेल होता है? तो निक्षेप हैं चार, नामनिक्षेप, स्थानानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप इन चार निक्षेपोंमें तो नाम स्थापना, द्रव्य तीन निक्षेप संग्रहनयसे ग्रहण किए जाते हैं, अतएव दो निक्षेपोंसे व्यवहार नहीं बनता। व्यवहारके लिए भावनिक्षेप समर्थ है। यहाँ प्रमाण और नयोंसे वस्तुका अधिगम होता है। यों वस्तुकी जानकारीके उपायोंके प्रसंगमें नयोंका विवरण चल रहा है। नय द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक ऐसे दो प्रकारके होते हैं। द्रव्यार्थिकनय में नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीन नय हैं और उन तीनोंमें भेद करके जानना यह व्यवहारनय है। यह द्रव्यार्थिकनयका एक नीचा अन्तिमरूप है। द्रव्यार्थिकनयसे एक सामान्य द्रव्यका बोध किया जाता है।

पर्यायार्थिकनयमें ऋजुसूत्रनयकी अर्थनयरूपता अब पर्यायार्थिककी बात कहते हैं। पर्यायार्थिकका अर्थ है पर्याय ही जिसका प्रयोजन है, सो पर्यायमें और भेद क्या? वह तो भेदरूप अंश है। इसलिए पर्यायार्थिकनयमें अर्थनय तो एक ही है ऋजुसूत्रनय। अब उस ही एक अर्थके ऋजुके द्वारा विषय किए गए पर्यायके शब्दभेदसे और रूढ़िसे और तत्क्रिया निष्पत्तिकी दृष्टिसे तीन भेद और होते हैं, वे भी पर्यायार्थिकनय कहलाते हैं। यहाँ पर्यायार्थिकनयमें जो अर्थनय है उसका नाम है ऋजुसूत्रनय। ऋजु मायने एक सूत्रपात, उसकी तरह जो ऋजुको जाने उसका नाम है ऋजुसूत्र याने जैसे कारीगर सूत्रपात

करके सूतसे एक तंत्र बनाता उसी प्रकार इस नयकी दृष्टिमें द्रव्यमें प्रथम क्षणकी परिणतिको निरखकर एक वहाँ विशेष तंत्रकी तरह बनता है, ऐसी दृष्टिको ऋजुसूत्रनय कहते हैं। ऋजुसूत्रनय समस्त त्रिकाल विषयोंका उल्लंघन कर, उसकी अपेक्षा न रख वर्तमान विषयके कालको ही ग्रहण करता है, याने वर्तमान क्षणकी पर्याय मात्र इस नयका विषय है। तीन कालकी पर्यायमें अतीत कालकी पर्याय तो नष्ट हो ही चुकी। उससे तो व्यवहार प्रयोगका काम क्या बनेगा? भविष्यकालकी पर्याय उत्पन्न हुई नहीं, उससे भी कार्य कुछ न बनेगा? व्यवहार न हो सकेगा। इस कारण इस पर्यायार्थिकनयमें इस वर्तमान पर्यायकी ही एक नजर रखी गई है।

जैसे कोई कहे कि आंवलेमें दवाई है तो आंवलेके पहले और अन्तकी स्थितियाँ तो दवाईमें नहीं आतीं। उसका अर्थ ही यह है कि जब उसमें रस उत्पन्न हुआ है, ऐसा आंवला दवाई है। पहिली अवस्थामें रस अल्प था, अगली अवस्थामें वह रस रहता नहीं। तो जैसे वहाँ एक बीचकी प्रथम स्थिति उपकारी है, ऐसे ही पर्यायोंमें प्रथम क्षणका पर्याय ही एक अर्थक्रिया करता, काम करता। पर सूक्ष्म दृष्टि करके देखें तो वह भी प्रयोगमें नहीं आता। तब तो ऋजुसूत्रनयका विषयमात्र जान लेना इस नयका प्रयोजन है।

ऋजुसूत्रनयकी अप्रयोज्यता व अव्यवहार्यता होनेसे मात्र विषयज्ञापतिके लिये नयरूपता यहाँ कोई ऐसी आशंका रख सकता है कि ऋजुसूत्रनयका विषय क्या बताया जाय? तो कहा जायेगा वह या तो अतीतको संकेत करेगा या भविष्यको संकेत करेगा या हो चुका होगा। हो रहे का संकेत करने वाला शब्द क्या है? तो सुनो, इसे पच्यमानपक्व ऋजुसूत्रनयसे कहा जायेगा। जैसे चावल पकाये तो वर्तमान अवस्था क्या? पक रहा, पक गया, उनमें विरोध न समझना, क्योंकि वह पक रहा, पका कहलाता है, क्योंकि पहले समयमें यदि कोई अंश न बना, पका तो दूसरे क्षणमें भी न पका, तीसरेमें भी न पका। कभी एक ही समयमें तो पक नहीं जाता। फिर तो पाकका अभाव ही हो गया और पक गया, ऐसा बोल नहीं सकते। तब उसे बोलेंगे पच्यमानपक्व। जैसे किसी अनाजके बर्तनका नाम रखा प्रस्थ, प्रकर्ष रूपसे जिसमें गेहूं आदिक ठहर सकें उसे प्रस्थ कहते हैं। तो जब मापा जा रहा है तब वह प्रस्थ है, शेष समय नहीं। जैसे कोई आनेके बारेमें पूछे कि भाई आज तुम कहाँसे आ रहे हो? तो वह कहता है कि कहींसे नहीं आ रहे, क्योंकि जिस समय पूछा जा रहा है तो वह तो बैठा हुआ है और बैठे हुएमें पूछ रहे कि कहाँसे आ रहे? आ कहाँ रहे, चल कहाँ रहा, बैठा ही तो है। उस कालमें तो चलनेकी क्रिया नहीं हो रही है। तो ऋजुसूत्रनयका ऐसा वर्तमान क्षणका विषय है कि वह व्यवहार अयोग्य है, फिर भी पर्याय तो है, समयमें जाननेका तो है। क्या हो रहा है? ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें विशेष्यविशेषण भाव भी नहीं कहा जा सकता।

जैसे कोई विशेषण लगाया काला कौवा, तो काला तो कालेमें ही कृष्णत्व रखता है और कौवा कौवामें ही काकपना रखता है। कृष्णत्व काकमें नहीं, काकमें कृष्णत्व नहीं। कृष्ण कृष्णात्मक है। वह

काकात्मक नहीं। यदि काला कौवा कौवामें स्वरूप हो जाये तो जो-जो काले हैं वे सब कौवा कहलाने लगेगे और कौवा अगर कृष्णादिक हो जाये तो उसी शरीरमें जो अन्य वर्ण है सो अन्य वर्णन रहना चाहिए। खून भी काला हो, हड्डी भी काली हो तब कहा जाये कौन काला। तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि एक ऐसे क्षण पर है कि जिससे व्यवहार नहीं बनता। केवल एक जानकारीका विषय बनता है। ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें समानाधिकरण भी नहीं बनता। शक्ति शक्तिरूप है, पर्याय पर्यायरूप है। यह सब वर्णन कि एक पदार्थ है, उसमें गुण है, उसमें पर्याय है, यह पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं है। यह तो द्रव्यार्थिकनयका भेदगत व्यवहारनयका विषय है। व्यवहारनय वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करता, जिसमें निर्णय नहीं पड़ा हुआ है और न उसका आश्रय लेकर निर्णय ही किया जाना चाहिए, क्योंकि पर्यायार्थिकनय तो केवल वर्तमान पर्यायमात्रको विषय करता, निर्णयके लिए वह किसी भी रूपमें समर्थ नहीं है, वह तो ऐसी वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता कि जहाँ उत्तरक्षण और पूर्वक्षणसे कुछ सम्बन्ध न रखा हो। इस नयकी दृष्टि में कोई यह भी व्यवहार नहीं कर सकता कि अगर दूकानमें रुई जल रही है तो वह कह सकेगा इस दृष्टिमें रुई जल रही है, क्योंकि क्षणको देखिये जो जो जल रही है वह रुई नहीं, जो रुई है वह वर्तमानमें जल नहीं रही। इस प्रकार ऋजुसूत्रनय एक क्षणके ही मात्र तत्त्वको देखता है। वहाँ न कार्यकारण भाव है, न विशेष्यविशेषण भाव, न समानाधिकरण भाव, किन्तु एक क्षण बिजली दर्शनकी तरह एक वर्तमान पर्याय मात्रका अवलोकन हो जाना ही इस पर्यायार्थिकनयका प्रयोजन है। यहाँ कोई यह आशंका कर सकता है कि जब व्यवहार ऋजुसूत्रनयमें नहीं तो कोई व्यवहार बनता नहीं, भोजनपान आदिकका व्यवहार बनता नहीं, कोई चीज भी तैयार नहीं हो सकती। सारे व्यवहारका लोप हो जायेगा। तो इस शंकाका समाधान यह है कि व्यवहार बना रहे यह कोई मंशा नहीं है नयों की। जहाँ हो सकता है व्यवहार हुआ। इस प्रकारकी दृष्टिमें व्यवहार नहीं बनता है तो मत बनो। यह तो वर्तमान पर्यायमात्र किस प्रकार है, कैसा अवक्तव्य है, अप्रयोजन है, अव्यवहार्य है, इतने मात्रका दर्शन इस नयमें कराया गया है। व्यवहारकी सिद्धि पूर्वनयसे हो जायेगी और व्यवहारकी सिद्धि पर्यायार्थिकनयके भेद रूप व्यवहारनयसे होती है।

नयोंकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मताके प्रसंगमें शब्दनयका विवरण अब यहाँ ऋजुसूत्रनयसे एक वर्तमान पर्याय जाना, इतनी बात तो आयी। अब उसमें भी कई और भेद हो सकते हैं। इसका वर्णन शब्दनय समभिरूढ़ और एवंभूतमें होगा। यद्यपि अंतिम तीन नयोंके भेदसे अर्थमें भेद नहीं पड़ता, क्योंकि ऋजुसूत्रनयका विषयभूत जो अर्थ है वह एक अन्तिम भेद है। एक क्षणसे और भेद क्या बनेगा? लेकिन एक क्षणके विषयको शब्दों द्वारा भेद करना इन नयोंका प्रयोजन है। शब्द ऋजुसूत्रनयसे ग्रहण किए गए अर्थमें शब्दोंसे अर्थ भेद करना, उपयुक्त शब्द द्वारा किसी एक अर्थको ग्रहण करना प्रयोजन है। शब्दका अर्थ है जो सर्व सम्पत्ति याने अर्थको कहे, अर्थका ज्ञान कराये उस नयको शब्दनय कहते हैं, याने जिस शब्दका उच्चारण किया गया है वह शब्द। जो पुरुष सुन रहा हो उसको अपने

अविधेयमें जानकारी बना दें, उसीका ही नाम तो शब्द है, शब्दनय है। यह शब्दनय लिंग, संख्या, साधन आदिकका व्यभिचार दूर कर देता है याने ऋजुसूत्रनयसे तो लिंग संख्याकी विशेषता नहीं, इसकी ओर दृष्टि भेद न डालकर किसी भी शब्दसे कह लो, बस वर्तमान अर्थमें आना चाहिए। यहाँ तक ही मंशा ऋजुसूत्रनयकी थी। अब शब्दनय शब्दके उपयुक्त अर्थको ग्रहण करता है। जैसे एक स्वाति नक्षत्र तारा होता है। अब उस स्वाति तारा है ऐसा कथन ऋजुसूत्रनयमें तो चल जाता है, क्योंकि ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि शब्द पर नहीं है, पर शब्दनय यह कहता है कि स्थिति तारा यह कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि स्वाति है पुल्लिंग और तारा है स्त्रीलिंग। स्त्रीलिंगके साथ पुल्लिंगको कहना, पुल्लिंगके साथ स्त्रीलिंगको कहना यह शब्दनयमें दोषकी बात है।

जैसे कोई कहे विद्या याने ज्ञान तो विद्या स्त्रीलिंग और ज्ञान नपुंसक है। तो इसका कैसे जोड़ सही बन रहा? कोई कहे कि आयुध शक्ति है, आयुध मायने हथियार, आयुध है नपुंसकलिंग, शक्ति है स्त्रीलिंग। इन दोनों शब्दों का मेल कर देना ऋजुसूत्रनय में तो क्षम्य है, पर शब्दनयकी दृष्टिमें क्षम्य नहीं है। वे इसे दोष समझते हैं कि अन्य लिंगकी सिद्धिके साथ अन्य लिंगका सम्बन्ध बनाना। इसी प्रकार संख्याका व्यभिचार भी शब्दनयको पसंद नहीं है। जैसे बहुतसे आमके पेड़ हैं और उसे यों कहना कि यह आम्र वन है। तो ऋजुसूत्रनय तक यह बात चलती थी, वहाँ शब्दकी मुख्यता नहीं, मगर आम तो बहुत हैं और वन एक कहा जा रहा है तो बहुतके साथ एकका जोड़ करना शब्दनयमें मंजूर नहीं है। तो इसी तरह शब्दोंके भेदसे ऋजुसूत्रनय द्वारा गृहीत अर्थमें भेद करना और ऐसे भेद करते हुए परिचय करना यह शब्दनयका कार्य है।

जैसे कोई कहे कि इसका सर्वको जान लेने वाला पुत्र होगा तो पुत्र तो होगा भविष्यमें और उस पुत्रका रख रहे हैं विशेषण सर्व (सबको) जानने वाला तो यहाँ जान लेना तो उठती हुई बात हुई और होगा भविष्य में। तो भूतका भविष्यके साथ मेल बनाना यह शब्दनयको पसंद नहीं है। शब्दनय तो शब्दमें जैसी ध्वनि है उस ही रूप अर्थसे मेल करेगा। तो इस प्रकारके व्यभिचार नहीं होते कि पुल्लिंग शब्दके साथ स्त्रीलिंग, भूतका भविष्यके साथ मेल कराये, ये दोष शब्दनयमें नहीं हुआ करते, क्योंकि शब्दनयकी दृष्टिमें वे सब जुदे-जुदे अर्थ हैं और जुदे-जुदे अर्थका अन्य अर्थसे सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। यदि भिन्न अर्थका भिन्नके साथ सम्बन्ध जुड़ जाये तो घड़ा कपड़ा हो जाये, कपड़ा मकान बन जाये, क्योंकि एक अर्थ दूसरे रूप होने लगा मान लिया। तो शब्दनय इतने बारीक विषयको ग्रहण करता कि ऋजुसूत्रनयसे जो अर्थ ग्रहण किया गया उसमें भी शब्दभेदसे भिन्न-भिन्न रूपमें ग्रहण करता है। यहाँ कोई कहे कि इस तरहसे तो लोक का, सिद्धान्त का, व्यवहारका विरोध हो जाता है। तो उत्तर यह है कि विरोध होने दो। यहाँ तो ऐसी चर्चा चल रही है कि किस नयमें क्या तत्त्व नजर आता है? व्यवहार कैसे द्रव्यार्थिकनयके भेदाभेद व्यवहारसे चलेगा। तो यहाँ तक शब्दनयसे ऋजुसूत्रनयसे ग्रहण किए गए अर्थमें और भी भेद करके जुदा-जुदा पहिचाना।

नयोंकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मताके प्रसंगमें समभिरूढ़नयका प्रतिपादन अब इस ऋजुसूत्रनयके विषयसे और सूक्ष्म विषय है समभिरूढ़नयका । तो शब्दभेदसे अर्थभेद किया । अब समभिरूढ़नयमें एक शब्दके अनेक अर्थ हैं । उन अनेक अर्थोंको तो शब्दनयने जाना, पर समभिरूढ़नय उन अनेक अर्थोंसे एक पदार्थ जो कि समभिरूढ़ है, प्रसिद्ध है, लोकसम्मत है, उसको ही ग्रहण करना, यह समभिरूढ़नयका अर्थ है । समभिरूढ़का अर्थ है नाना अर्थोंको एक अर्थमें ही अभिमुखताको रूढ़ करे और समभिरूढ़ है । जो एक अर्थ पकड़ा गया समभिरूढ़नय वह अन्य वस्तुमें संक्रमण नहीं करता । जैसे कि तीसरा शुक्लध्यान बताया है सूक्ष्मक्रिय, वह वितर्करहित है, परिवर्तनरहित है, क्योंकि यह सूक्ष्म कार्य योगमें हुआ करता है । इसी प्रकार समभिरूढ़नयसे जो कोई बोला गया शब्द, जैसे गौ तो यह शब्द यद्यपि अनेक अर्थोंमें लग रहा है तो भी एक अर्थमें ही वर्तमान होता है । गौके अर्थ अनेक हैं कान्ति, वाणी, किरण, पर अर्थ लिया गया गाय पशु से । तो समभिरूढ़में यह मंशा है कि एक अर्थका एक पदार्थके ही साथ प्रयोग होवे, क्योंकि शब्दभेद है तो अर्थभेद भी अवश्य होना चाहिए । तो नाना अर्थोंमें लगनेसे यह समभिरूढ़ कहलाता है, याने जो शब्द जिस पदार्थमें प्रसिद्ध है उसका वही वाच्य होता है, ऐसी समभिरूढ़की मंशा है, क्योंकि प्रत्येक अपने आपमें ही रहने वाला होता है ।

नयोंकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मताके प्रसंगमें एवंभूतनयका विवरण अब समभिरूढ़नयसे और सूक्ष्मनय है एवंभूत । जिस स्वरूप से, जिस अविधेयसे याने शब्दकी जो मंशा है उस रूप क्रियासे जो हो उसे उस ही क्रियासे निश्चय करना सो एवंभूतनय होता है । जैसे राजाका अर्थ है शासन करना, राज्य करना, वह कभी किसी जगह खेल रहा हो तो वह राजक्रिया नहीं कर रहा उस समय उसमें राजत्व नहीं है, जैसे इन्द्र शब्दका अर्थ है विलय, ऐश्वर्य वाला होना । तो जब अपना ऐश्वर्य कला दिखा रहा उसी समय वह इन्द्र है, अन्य समय उसे इन्द्र कहना युक्त नहीं है, क्योंकि जिस समय जो क्रिया हो रही है वह है, पूर्व-उत्तर कालमें वह क्रिया नहीं है तो उस शब्दके द्वारा वह वाच्य नहीं हो सकता । इस नयकी दृष्टिमें तो इन्द्रमें ज्ञानमें लग रहा आत्मा ही इन्द्र कहलाता है । अग्निके ज्ञानमें लग रहा अग्नि ही इन्द्र कहलाता । षट्षडागम ग्रंथमें बताया है कि एवंभूत नयसे नारकी कौन है जो नरक पर्याय सम्बन्धी ज्ञानसे परिणत हो रहा है ।

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि यदि अग्निके ज्ञानमें परिणत जीवको ही अग्नि कह दिया जाये तो अग्निको जलाने वाली होती है तो क्या वह जल उठेगा? इसका समाधान यह है कि एवंभूतनयमें आगमभाव अग्निकी बात कही जाती है । यों आगमभाव अग्नि तो अग्नि ही है, उसमें दाहकत्व तो है, पर अग्निके स्वरूपको जानने वाले आगम भाव निक्षेपकी अपेक्षा अग्नि कहलाती है तो वह तो आगम भाव रूप है । एवंभूतनय, समभिरूढ़नयसे भी सूक्ष्म है । तो ये सातों नय उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषय वाले होनेसे इनका क्रम यों रखा गया कि ताकि यह ज्ञात हो कि अगला-अगला नया कारण पूर्व-पूर्व नय होता है । तो पहले-पहलेके जो महान् विषय हैं उस ही के अन्तर्गत अल्प-अल्प

विषय वाले नय होते जाते हैं। तो ये सब नया जब गौण प्रधान रूपसे समझें जो पर सापेक्ष हो जाते हैं, इस तरहका कोई परिचय करे तो ये सम्यग्दर्शनके हेतु होते हैं, और यदि ये स्वतंत्र-स्वतंत्र ही अपने-अपने विषयकी जानकारी भर रखनेका प्रयोजन पूर्ण करें तो ये सम्यग्दर्शन जैसे विशुद्ध परिणामकी उत्पत्तिमें कारण नहीं हो सकते।

नयोंके विवरणकी तीन पद्धतियाँ वस्तुके स्वरूपके जाननेके उपाय मुख्यतया प्रमाण और नयोंको कहा है, जिसमें प्रमाणके वर्णनके बाद नयोंका वर्णन चल रहा है। ये नय एक साधारण पद्धतिमें ७ प्रकारके हैं। जैसा सूत्रमें कहा है कि अध्यात्मपद्धतिसे चार प्रकारके हैं परमशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, अशुद्धनिश्चयनय और व्यवहारनय। परमशुद्धनिश्चयनय तो अखण्ड एक स्वरूपको विषय करता है। शुद्धनिश्चयनय शुद्ध पर्यायको द्रव्यके साथ एकतारूपसे देखता है अर्थात् वहाँ किसीपर पदार्थपर दृष्टि नहीं है। किसके अभावसे स्वभावपर्याय हुई, यह भी वहाँ कल्पना नहीं है। अशुद्धनिश्चयनयके विषय हैं जीवके अशुद्ध परिणमन। यह अशुद्धनिश्चयनय अशुद्ध पर्यायको जीवके साथ ही जोड़ता हुआ देखता है। किसका निमित्त पाकर हुआ है, ऐसी कल्पना नहीं करता और न किसी अन्य पदार्थ पर दृष्टि रख रहा है। व्यवहारनय एक विकारके तथ्यको प्रकट करता है अथवा समस्त नयोंके प्रतिपादनकी विधि बनाता है। तीसरी पद्धति है बुद्धिशब्दार्थपद्धति याने ज्ञाननय, अर्थनय और शब्दनय। ज्ञाननय तो नैगमनय है, इसमें ज्ञानरूप विषय है, अर्थनय, संग्रहनय, व्यवहारनय और ऋजुसूत्रनय विषयको जानता है। शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवंभूतनय इन तीन नयोंके विषयको जानता है।

नयोंकी व्यापकविवरणवाली पद्धतिमें द्रव्यार्थिक हेतुक निश्चयनयके प्रथम प्रकारका दिग्दर्शन अब चौथी पद्धति देखिये एक व्यापक विवरण वाली पद्धति। इस पद्धतिके अनुसार नयके दो भेद हैं (१) निश्चयनय, (२) व्यवहारनय। निश्चयनयके दो भेद हैं (१) द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय (२) पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय। इसी प्रकार व्यवहारनयके चार भेद हैं उपचरित सद्भूतव्यवहारनय (२) अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय (३) उपचरित असद्भूतव्यवहारनय और (४) अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय। अथवा इस पद्धतिमें व्यवहारनयके ५ भेद किए जाते हैं (१) शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय (२) अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय (३) स्वगात असद्भूतव्यवहारनय (४) विगात असद्भूतव्यवहारनय (५) स्वगातविगात असद्भूतव्यवहारनय। अभी जो निश्चयनयके भेद कहे गए थे द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय और पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय। इनमेंसे द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका विवरण सुनो मूलमें इस प्रकारका अर्थ है कि जो निश्चयनय द्रव्यार्थिकनयकी विधिको विषय करता हुआ है वह है द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय। जैसे यह नय १० प्रकारोंमें बँटा हुआ है, जिसमें पहला प्रयोग है परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय, याने जो वस्तुके परमपारिणामिक सहस्वभावको ग्रहण करने वाला हो वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय है। जैसे आत्मतत्त्वके विषयमें इस दृष्टिमें ऐसा परिचय मिलता है कि आत्मा चेतन्यस्वरूप

है। नयोंके समस्त विवरण में, सभी भेदोंमें यह घटाते जाना चाहिए कि इस नयसे हमें वस्तुका किस भाँति परिचय मिलता है, और उस परिचयसे आत्मा अपने हितकी ओर कैसे मुड़ता है, इस नयने आत्माको चैतन्यस्वरूप देखा। अखण्ड, अन्य कुछ दिख ही नहीं रहा। यह नय तो इस नयका प्रभाव जो आत्मापर पड़ता है वह तो प्रकट ही है। केवल एक चैतन्यस्वरूप पर दृष्टि होनेसे यहाँ विकल्प दूर होते हैं, संकट नहीं रहते, सहजस्वभावकी उपासना बनती है। जिससे कर्मकलंक दूर होते हैं, मुक्तिके निकट पहुंचते हैं। वस्तुके स्वरूपका प्रयोजन यह है कि आत्महितका त्याग करें और हितको ग्रहण करें। अहित है विकारको स्वीकार करना और हित है सहजस्वभावको स्वीकार करना, क्योंकि हित तो जीवका अनाकुल भाव है जिसमें आकुलता मिटे वह तो हित है और जहाँ आकुलता बढ़े वह अहत है। तो जहाँ विकारसे लगाव रहेगा वहाँ आकुलता ही मिलेगी। विकारका लगावका आधार पाकर ही जीव बाह्य पदार्थोंमें लगाव रखता है। वस्तुतः देखा जाये तो बाह्य पदार्थोंमें लगाव कोई भी नहीं रख सकता, क्योंकि बाह्य पदार्थ भिन्न पदार्थ हैं, आत्मा भिन्न पदार्थ है। भिन्न पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ से सम्बंध नहीं कर सकता। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी एकका दूसरेमें नहीं है। तो निश्चयतः लगाव जीवका अन्य द्रव्योंमें नहीं होता, किन्तु कर्मोदयको निमित्त मात्र पाकर होने वाला जो जीवमें प्रतिफलन है, प्रतिबिम्ब है उसके साथ यह जीव लगाव करता है। सो ये विकार परभाव हैं, औपाधिक हैं, जीवके स्वरूप नहीं हैं। उसे परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयने स्वीकार भी नहीं किया। तो इस दृष्टिमें जीवको आकुलता नहीं रहती और अपने निराकुल स्वरूप हितको इस नयके माध्यमसे पा लेता है। सर्वत्र नयोंके विवरणमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी नय निरपेक्ष होकर सत्य नहीं होते, सापेक्ष होकर ही सत्य होते हैं। तो यह सापेक्षता उस समय दृष्टिमें तो नहीं, किन्तु प्रमाणसे अधिगम होता है, अतएव उसकी जानकारी में वह सब अपेक्षा पड़ी हुई है। तो इस प्रकार प्रमाणसे जाने गए पदार्थमें फिर नयोंसे जाननेको सही नय कहते हैं।

भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिक हेतुक निश्चयनयका दूसरा प्रकार है भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय। इस नयके नामसे ही अर्थ निकल आता है याने भेदकल्पना न करके अभिन्न वस्तुके ग्रहण करने वाले नयको भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। इस दृष्टिमें ग्रहण किए गए एक शुद्ध द्रव्यको अर्थात् परसे भिन्न और निजके एकत्वमें तन्मय, पर गुणपर्यायोंसे अभिन्न देखा गया है। भेदकल्पना नहीं की, इसके एवजमें अभेदरूपसे निरखना चल रहा है। जैसे आत्मा अपने गुण और पर्यायोंसे अभिन्न है, इस नयका प्रभाव आत्मा पर क्या पड़ता है, यह बात समझनेके लिए इसमें विपरीतनयकी दृष्टिके प्रभावसे पहले समझिये जब कोई जीव आत्माको इस तरह देखे कि इसमें गुण है, पर्याय है, गुण अनन्त हैं, प्रत्येक गुणकी पर्याय होती है, ऐसा प्रतिसमय उतनी ही पर्यायें हैं और फिर अगले-अगले समयमें जुदी-जुदी पर्यायें होती हैं है तो यह विवरण ही। वस्तुके बारेमें प्रतिपादन इस तरह भी होता है, पर यों भेद करके दृष्टि

रखनेसे एक निर्विकल्पता अथवा समाधिका अवसर नहीं होता और जहाँ समस्त गुण पर्यायोंसे अभिन्न एक द्रव्यको ही देखा वहाँ विकल्प शान्त होते हैं और यह समाधिके अवसरका पात्र होता है। तो इस नयकी दृष्टिमें इस जीवने अपने आपमें एक अद्भुत प्रभाव पाया। यह प्रभाव तब ही बन सका जब प्रमाण द्वारा ग्रहण किए गए आत्मपदार्थमें इस दृष्टिमें निरखा गया है।

स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका तीसरा प्रकार है स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय अर्थात् अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मुख्यतासे वस्तुको ग्रहण करना इस नयका काम है। जैसे आत्मतत्त्वके बारेमें यों निरखना कि यह मैं आत्मा अपने द्रव्य, अपने क्षेत्र, अपने काल और अपने भावसे हूं अर्थात् जो मैं हूं शक्तिरूप, परिणामरूप ऐसा यह मैं पूरा पदार्थ अपने ही द्रव्यसे हूं, ऐसा निरख रहा है यह नय। साथमें यह भी बात लगी है कि परद्रव्यसे मैं नहीं हूं। पर यह सब प्रमाणसे जान लिया गया था, तो प्रमाणसे जाने हुए आत्मपदार्थके विषयमें इस नयसे समझा जा रहा कि मैं अपने द्रव्यसे हूं, अपने क्षेत्रसे हूं जो मेरा निज क्षेत्र है, आत्मप्रदेश है, उन रूपसे मैं हूं, किसी पर के प्रदेश रूपसे मैं नहीं हूं। जो सत् होता है वह स्वतंत्र होता है, वह अपने आपके सर्वास्तित्वसे अपने आप सत् रहता है। तो यह मैं आत्मा अपने क्षेत्रमें हूं, यह इस नयने जाना। यह मैं आत्मा अपने कालसे हूं। मैं पदार्थहूं तो मुझमें प्रतिसमय परिणमन होता रहता है। जो मेरा परिणमन है वह मेरा काल है, स्वकाल है। मैं स्वकालसे हूं। इसके साथ यद्यपि यह भी बात लगी हुई है कि परकालसे नहीं हूं, किन्तु यह समझ प्रमाणकी है और प्रमाणसे समझे गए ही पदार्थमें इस नयसे जाननेका प्रभाव होता है। मैं अपने परिणमनसे हूं, अपनी पर्यायको अपनेमें ही विकसित करता हूं, ऐसा इस नयमें देखा जा रहा है। मैं अपने भावसे हूं अर्थात् मेरी शक्ति, मेरा बल मेरे में ही है और उस ही भावसे रहता हूं। ये ही शक्तियाँ गुण कहलाती हैं, ये ही शक्तियाँ अभेददृष्टि स्वभाव कहलाती हैं। मैं अपने स्वभावसे हूं, अपने गुणोंसे हूं, इस प्रकारकी दृष्टि इस नयमें होती है। इस दृष्टिका फल यह है कि जहाँ निःशंकापूर्वक यह बोध चल रहा है कि मैं अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे हूं। तो इस प्रकारके दर्शनमें इस जीवको संकट, आकुलताका कोई अवसर नहीं होता।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका चौथा प्रकार है परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। तो परद्रव्यके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको ग्रहण करने वाला है द्रव्यार्थिकनय। अर्थात् यह नय परद्रव्यके क्षेत्रको किस तरह ग्रहण करता? यह बात समझनेकी है। वह ग्रहण है एक प्रतिबंधक अर्थात् जैसे मैं परद्रव्यके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं हूं, मुझमें किसी भी परपदार्थका द्रव्य नहीं है। द्रव्य स्वयं सभी परिपूर्ण होते हैं और अपने आपमें परिसमाप्त हैं, किसी भी द्रव्य प्रवेश किसी अन्य द्रव्यमें नहीं होता, इसी प्रकार पर द्रव्यका प्रवेश उस ही मैं है, तन्मय ही तो है वह द्रव्य। परद्रव्यका क्षेत्र किसी तन्मय द्रव्यमें नहीं पहुंच सकता। मैं

परद्रव्यके क्षेत्रसे नहीं हूँ, अर्थात् मेरेको छोड़कर अनंत जीव, समस्त अनंत पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य, इनके प्रदेशसे मैं नहीं हूँ। परद्रव्यका काल याने परद्रव्यका परिणमन उन ही में है, प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने परिणमनसे व्याप्त होते जाते हैं, मैं परद्रव्यकी पर्यायसे अत्यन्त जुदा हूँ, इस तरह इस नयमें निरखा जा रहा है। मैं परभावसे नहीं हूँ, अन्य पदार्थकी शक्ति, अन्य पदार्थके गुण, अन्य पदार्थके भाव उस ही पदार्थमें हैं, अन्य पदार्थमें नहीं पहुंच सकते। मुझमें किसी एक पदार्थ का, परभावका भाव नहीं, शक्ति नहीं, धर्म नहीं है। इस तरह यह नय परपदार्थोंसे अपनेको विविक्त निरख रहा है। सम्यक्त्व उत्पत्ति ऐसे ही परिचय वाले पुरुषके होती है जो परपदार्थोंसे भिन्न और अपने आपमें तन्मय निज द्रव्यको निरखते हैं। तो इस नयका परपदार्थसे भिन्नताके निर्णयकी ओर इस आत्माको प्रभावित किया है।

अन्वयद्रव्यार्थिक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका ५वाँ प्रकार है अन्वयद्रव्यार्थिकनय। याने गुण और पर्यायोंमें अन्वय रूपसे रहने वाले द्रव्यको इस नयने ग्रहण किया है। प्रत्येक पदार्थ अपने समस्त गुणोंमें अन्वित है और इसी प्रकार जितनी पर्यायें होती हैं उन सब पर्यायोंमें पदार्थ अन्वित है। जैसे यह मैं आत्मा अपने समस्त गुणों रूप हूँ अथवा गुण कहाँ अलग है? आत्मा स्वयं एक अखण्ड तत्त्व है, एक स्वभावरूप है। वही एक स्वभाव जब समझा जाता है, जब इसे हम समझते हैं तो हम भेद करके गुणोंके रूपसे समझते हैं, तो वे गुण मुझसे भिन्न नहीं, उन गुणोंमें ही अन्वयरूपसे मैं हूँ, समस्त गुणोंमें व्यापक हूँ। इस प्रकार मेरी जो-जो पर्यायें होती जाती हैं वे सब पर्यायें मुझमें हैं। मैं उन पर्यायोंमें व्यापता जाता हूँ। पर्यायें मुझसे अलग नहीं हैं, मुझमें ही वे उत्पन्न हुए तो उन पर्यायोंमें अन्वयरूपसे रहता हूँ, ऐसा इस नयने दिखाया, जिससे संक्षेपमें यह निर्णय रहा कि मैं अपने गुणपर्याय स्वभाव वाला हूँ। प्रत्येक द्रव्य अपने गुणपर्याय स्वभाव वाला होता है।

उत्पादव्ययगौणसत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका छठा प्रकार है उत्पादव्ययगौणसत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय। इस नयके नामसे ही इस नयका विषय परख लिया जाता है। याने जिस दृष्टिमें उत्पाद और व्यय तो गौण हैं और सत्ताका ग्रहण है, ऐसा शुद्ध अभेद द्रव्यको निरखने वाला नय यहाँ इस प्रयोगताको अभेदकी ओर ले जाया जा रहा है। इस नयकी दृष्टि पदार्थ नित्य दिख रहा है, क्योंकि उत्पादव्ययको तो गौण किया गया है और केवल ध्रौव्य विषयको सदा ही निरखा जा रहा है। उत्पादव्यय नहीं होते, यह बात न समझना। उत्पाद व्यय सापेक्ष ही ध्रौव्य हुआ करता, लेकिन वह सब तो इस ज्ञानीने प्रमाणादिक द्वारा जान लिया। अब प्रमाण द्वारा जान ली गई वस्तुको ध्रौव्यदृष्टिसे देख रहा है तो उत्पाद व्यय गौण हो गए। केवल सत्ताकी दृष्टिसे वस्तुके धर्मको ग्रहण किया जा रहा है। तो इस नयमें पदार्थ नित्य निरखा जा रहा है और इस निरखनेका प्रभाव यह होता है कि जब यह निश्चय हो गया कि नित्य

हूँ, सदा रहता हूँ, तो इस दृष्टिके बलसे बहुत-सी आकुलता, शंका, भय दूर हो जाता है, और चूँकि मैं नित्य हूँ, सदा रहता हूँ तो मुझे अब थोड़े समयके कल्पित सुखोंमें रहकर अपना भविष्य न बिगाड़ना चाहिए, आदिक प्रेरणायें इस नयसे मिलती हैं।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका ७वां प्रकार है कर्मोपाधि निरपेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय, जहाँ कर्मोपाधिकी अपेक्षा नहीं है और अशुद्ध द्रव्यको देखा जा रहा है, ऐसे आशयमें जो द्रव्यका निरखना है वह कर्मोपाधि निरपेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। इसका विषय है जैसे संसारी जीव सिद्ध समान शुद्ध आत्मा हैं, कर्मोपाधिकी अपेक्षा रखी नहीं गई तो विकारके निरखनेकी गुंजाइश ही नहीं है और चूँकि देखा जा रहा है संसारी जीवको ही तो उसे समझाया जा रहा है सिद्ध समान शुद्ध आत्मा। इस नयका विषय द्रव्य है, इस कारण यह द्रव्यार्थिक है। इस नयने अभेद भीतरी स्वभावको ग्रहण किया, इस कारण यह निश्चयनय है। कर्मोपाधिकी अपेक्षा न होनेसे यहाँ निरखा जा रहा है सिद्ध समान शुद्ध आत्मा। इस नयकी दृष्टिमें शिक्षा क्या मिलती है कि संसार अवस्थामें भी जीवमें जीवत्व तो सिद्धप्रभुकी तरह है और उसमें जीवकी प्रकृति सिद्ध आत्माकी तरह शुद्ध अविकार अवस्थाकी है। इस नयकी दृष्टिमें बहुत बड़ी प्रेरणा मिलती है। हम अपनेको विकृत संसारमें भटकने योग्य पदार्थ न मानें कि हम तो ऐसे ही हैं कि जो संसारमें जन्म मरण करते रहें और इस तरह संसार बढ़ाते चले जायें, इसके लिए ही मेरा अस्तित्व है, ऐसा जानकर कायरता आती है। उस कायरताको यह नय मिटा देता है और अन्तः एक स्फूर्ति उत्पन्न करता है कि तू तो सिद्ध प्रभुके समान शुद्ध आत्मा तत्त्वकी प्रकृति वाला है।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकहेतुक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय अब द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका ८वां प्रकार सुनो। वह है कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय। इस दृष्टिसे अशुद्ध द्रव्यको निरखा जा रहा है, परन्तु अभेद रूपसे देखा जा रहा। साथ ही कर्मोपाधिकी अपेक्षा भी चल रही है। अभी जो ७वें प्रकारमें कहा गया था, जैसे वहाँ अशुद्ध द्रव्यको देखा ऐसे ही वहाँ अशुद्ध द्रव्यको देखा जा रहा है, किन्तु उस ७वें प्रकारके कर्मोपाधिकी अपेक्षा न होनेसे अन्तः शुद्धत्वकी दृष्टि हुई थी, किन्तु यहाँ कर्मोपाधिकी अपेक्षा होनेसे अशुद्ध विकारकी दृष्टि हो रही है। इसका विषय है जैसे कर्मके निमित्तसे उत्पन्न हुए क्रोधादिक भावात्मक आत्मासे वर्तमानमें आत्माको देखा जा रहा है वर्तमान पर्यायसे परिणत और चूँकि यहाँ उस पर्यायका द्रव्यसे भेद करके नहीं देखा जा रहा है, किन्तु उस पर्यायात्मक रूपसे देखा जा रहा है, इस कारण यह निश्चयनयका विषय है, फिर भी कर्मोपाधिकी अपेक्षा इस नयमें चल रही है, इस कारण अध्यात्मपद्धतिमें बताये गये अशुद्ध निश्चयनयसे इस नयमें व्यवहारिकता अधिक है, फिर भी आशयभेद होनेसे इसे पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयमें कहा गया है। इस नयकी दृष्टिसे हम यही तो निरख रहे हैं कि आत्मा क्रोधादिक भाव रूप है, कहीं अचेतन प्रकृतिरूप नहीं है, किन्तु आत्माका ही यह विकार बन रहा है और आत्माकी

परिणतिसे बन रहा है, अतः हमें प्रमादी न होना चाहिए या संतुष्ट न रहना चाहिए इस ओरसे कि ये तो सब प्रकृतिके विकार हैं, मेरा इसमें क्या बिगाड़ है? उस बिगाड़ रूपमें हूं ऐसा एक चित्तमें पुरुषार्थकी ओर प्रयास बनता है और उस प्रयासमें मदद दे रही है कर्मोपाधिकी अपेक्षा वाली दृष्टि। ये क्रोधादिक दूर हो सकते हैं, क्योंकि ये मेरे सहजस्वभावसे नहीं हुए हैं, कर्मोपाधिकी अपेक्षा रखकर हुए हैं। इस तरह मिल-जुलकर एक जागृति उत्पन्न हुई है।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नामका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका ६वाँ प्रकार है भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय। इस नयमें अशुद्ध द्रव्यको ग्रहण किया गया है, मगर यह अशुद्ध विकाररूप नहीं है, किन्तु अखण्ड द्रव्यमें प्रतिबोधके लिए जैसे भेद किया जाता है उस भेदविधिसे खण्ड करके गुणोंको निरखा जा रहा है। आत्मामें अनन्त गुण हैं, ऐसा निरखना, आत्मामें भेद कल्पना किए बिना नहीं बनता। वस्तु तो प्रत्येक अखण्ड है और उसका स्वरूप स्वभाव अखण्ड है, किन्तु अखण्ड स्वभावका एकान्त करके कोई कुछ प्रतिपादन करना चाहे और दूसरेको समझाना चाहे तो उसमें समझ नहीं बढ़ती। इस कारण अखण्ड वस्तुमें भेदकल्पना करके अनुरूप स्वभावके अविरोद्ध और स्वभावको समझनेमें मदद करने वाली शक्तिको निरखा जाता है। इस नयके बलसे आत्माके विषयमें बड़े विवरणके साथ समझ बनती है। आत्मा कैसा है? ज्ञानवान है, क्योंकि यह जाननहार है। इसमें जाननेकी शक्ति है। आत्मा कैसा है? आनन्दस्वरूप है, अनाकुल स्वभावी है, इसमें आत्मीय सहज आल्हादकी शक्ति है। आत्मा चारित्रवान है। आत्मा ज्ञानमुखेन ज्ञानबलसे अपने ज्ञानस्वरूपमें समा जाये, ज्ञान द्वारा ज्ञानस्वरूपको ही जाना करे, ऐसी इसमें शक्ति है आदिक रूपसे आत्माका विशेष विवरण समझमें आता है और जब आत्माका विशेष विवरण समझमें हो तो उसे संकोच कर, स्वभावमें ढालकर हम स्वभावके परिचयके पात्र बनते हैं, और स्वभावका आश्रय स्वभाव परिचय बिना नहीं बनता। स्वभावपरिचयसे स्वभावाश्रयकी पात्रता होती है और स्वभावश्रय होनेसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी समृद्धि होती है।

उत्पादव्ययसापेक्ष द्रव्यार्थिकनयका द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयका १०वाँ प्रकार है उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय। इस नयकी दृष्टिमें देखा तो जा रहा है द्रव्यको जो कि ध्रुव है, पर उसे उत्पादव्ययसापेक्ष देखा जा रहा है, इस नयका विषय है द्रव्य एक ही समयमें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है अर्थात् पदार्थ उसी समय नवीन अवस्थामें आता है, पुरानी अवस्थाको विलीन करता है और उसका द्रव्यत्व सदा रहता है, सो उस समय भी है। इस नयमें द्रव्य ही देखा जा रहा है और उस द्रव्यको अभेद रूपसे देखा जा रहा है, इसलिए यह निश्चयनय है और इसका विषय द्रव्यार्थिक है, अतः द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय है, किन्तु साथ में उत्पादव्ययकी अपेक्षा चल रही है इसलिए यह अशुद्ध है। यहाँ अशुद्धका मतलब विकारसे नहीं है, किन्तु खण्डसे है। एक अखण्ड पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्यका भेद रखकर पदार्थको देखा जा रहा है जिसका परिणाम तथ्यमूल

है। इस नयका विषयभूत जब आत्माको किया जाता है तो वहाँ यह शिक्षा मिलती है कि आत्मा केवल ध्रुव ही नहीं है जो अपरिणामी हो, जिसमें कुछ परिवर्तन हो ही न सकता हो वह उत्पादव्यय वाला है। आज यदि अज्ञान अवस्था है, विकट अवस्था है तो इसे दूर कर निराकुल अवस्था प्राप्तकी जा सकती है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय १० प्रकारोंमें परखा गया है। बताया गया था कि निश्चयनयके दो भेद हैं (१) द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय और (२) पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय, जिसमें प्रथमका वर्णन हुआ।

पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयके प्रसंगमें अनादिनित्य पर्यायार्थिकनयका वर्णन अब पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयका वर्णन करते हैं। इसके ६ प्रकार हैं, जिनमें पहले प्रकारका नाम है अनादिनित्य पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय। इस नयकी दृष्टिमें देखा तो जा रहा है पर्यायरूपसे ही, परन्तु स्थूल दृष्टिसे देखा जा रहा है। पदार्थमें प्रतिक्षण नवीन-नवीन पर्याय बनती हैं, लेकिन ऐसी समय-समय वाली पर्यायको न देखकर स्थूल रूपसे देखा जा रहा है। इस नयकी दृष्टिमें जैसे यहाँ देखा जाता है कि चन्द्र सूर्यादिक पर्यायें नित्य हैं, चन्द्र सूर्य भी विमान हैं। और स्कंध हैं, पर्याय हैं, लेकिन यहाँ भी क्षण-क्षणमें कितने ही परमाणु बनते हैं, कितने ही परमाणु नये आते हैं और इस कारण इस स्कंधमें भी प्रतिक्षण नई अवस्था चलती है, किन्तु उसे दृष्टिमें न लेकर एक स्थूल पर्याय दृष्टिमें ली गई है, जिसमें कि वह नित्य प्रतीत होती है। सभी लोग जानते हैं कि चंद्र सूर्य तो एक नित्य हैं और लोक दृष्टान्त भी देते हैं कि जब तक सूर्य चन्द्र हों तब तक अमुक प्रभावना बनती रहे तो चन्द्र, सूर्य ये स्कंध हैं, पर्यायरूप हैं, अतएव वस्तुतः अनित्य हैं, लेकिन उन पर्यायोंको समान रूपसे निरखा गया और स्थूल रूपसे देखा गया तो जैसे लोकप्रसिद्ध बात है उस तरहसे समझा कि चन्द्र, सूर्य आदिक पर्यायें नित्य हैं। इस दृष्टिमें जब आत्माको देखा जाता है तो आत्माकी भी पर्याय जैसे मनुष्य, पशु आदिक हैं तो मनुष्यपर्यायमें चूंकि कुछ वर्षों तक रहता है तो लोग ऐसा जानते हैं कि यह मनुष्यपर्याय नित्य है। सदा नित्य नहीं है, अनादि नित्य नहीं है, इस कारण इस नयका यह उदाहरण नहीं बन सकता, फिर भी स्थूल दृष्टिसे इस प्रकार निरखा जाता है। कहीं चन्द्र, सूर्यकी तरह मनुष्यपर्यायको नित्य न मान लिया जाये, यह एक शिक्षा इस नयसे मिलती है।

सादिनित्य पर्यायार्थिक नामका पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयका दूसरा प्रकार है सादिनित्य पर्यायार्थिकनय। इस नयकी दृष्टिमें उस पर्यायको देखा जा रहा है, जो पर्याय सदा रह सकती है। स्थूल दृष्टिमें देखने पर पर्यायकी समानतामें एकत्वका उपचार करनेकी बात कही जा रही है। यहाँ पर्यायको देखा जा रहा है जो सदा रहेगी, किन्तु उसकी आदि हुई है। जैसे सिद्धपर्याय नित्य है, जो जीव सिद्धपर्याय पा चुकता है उसकी वह सिद्धता कभी नष्ट नहीं होती। अनन्त काल तक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दरूप रहेगा ही। इस कारण यह सिद्धपर्याय नित्य कही जाती है। वस्तुः देखा जाये तो सिद्धपर्यायमें भी जीवका जो-जो भी

परिणमन चल रहा है वह प्रतिक्षण एक नवीन-नवीन परिणमन है, लेकिन विलक्षण परिणमन न होने से, समान परिणमन होनेसे उन सब परिणमनोंमें अभेद दृष्टि गई है और इस दृष्टिमें सिद्धपर्याय नित्य प्रतीत हुई। इस नयसे एक यह आश्वासन मिलता है कि एक बार यह जीव कर्मकलंकको नष्ट करके सिद्धपर्याय प्राप्त कर ले, फिर यह सिद्धपर्याय जो कि अनन्त आनन्दका धाम है वह कभी नष्ट नहीं हो सकती, और ऐसी ही अवस्था हम सब जीवोंके लिए उपादेय है। इस अवस्थाकी प्राप्तिके लिए जिन्होंने उद्यम किया उनका जीवन सफल है।

सत्तागौण उत्पादव्यग्राहक नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नामका पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय
पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयका तीसरा प्रकार है सत्तागौण उत्पादव्यग्राहक नित्य शुद्धपर्यायार्थिकनय। इस नयमें प्रत्येक समयकी पर्याय निरखी गई है और प्रत्येक समयकी अर्थात् एक समयकी जो पर्याय है वह अखण्ड है, यह अभेद निरंश अभेद है याने इसके और कोई खण्ड नहीं हो सकते। यह एक अन्तिम खण्ड है, इसलिए अभेद है। ऐसी अभेद पर्यायको देखनेसे इसे शुद्ध पर्याय कहा गया है। यहाँ विकारी पर्याय है या स्वाभाविक पर्याय है यह दृष्टिमें नहीं लेना है, किन्तु एक समयकी पर्याय है, यही मात्र दृष्टिमें लेना है। तो ऐसी एक समयकी शुद्ध पर्याय अनित्य ही है, इसलिए इसके साथ जो अनित्य विशेषण दिया है वह व्यक्तिसंगत है। वह अनित्य शुद्ध पर्याय तब दृष्टिमें आती है जब उत्पादव्ययका ग्रहण किया जा रहा हो। अब यह पर्याय हुई, अब वह पर्याय हुई, ऐसा उत्पाद देखा जाता हो, और जहाँ ऐसा उत्पाद देखा जा रहा हो वहाँ व्यय भी उसकी दृष्टिमें चल रहा है। किन्तु इस दृष्टिमें सत्ता गौण है, ध्रुवता गौण है। तो ऐसा जहाँ सत्ता गौण हो और उत्पादव्ययका ग्रहण हो ऐसी अनित्य शुद्ध पर्यायको निरखना चूँकि अभेदरूपसे ही बनता है इस कारण यह सत्ता गौण उत्पादव्ययध्रुवव्यग्राहक नित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय कहलाता है। इस नयमें एक प्रभाव बनता है। जो मनुष्य प्रमाण द्वारा वस्तुके स्वरूपको जान चुका है वह जब इस नयका उपयोग करता है तो चूँकि उसके उपयोगका विषय है एक समयकी शुद्धपर्याय।

यद्यपि छद्मस्थ अवस्थामें एक समयकी पर्यायका ज्ञान नहीं बनता, क्योंकि यह उपयोग अन्तर्मुहूर्तमें जानता है और अन्तर्मुहूर्तकी पर्यायको जान पाता है, फिर भी श्रुतज्ञानकी ऐसी महिमा है कि विशेष ज्ञान द्वारा एक समयकी तो बात क्या, एक समयमें भी कल्पना द्वारा खण्ड करके जान सकते हैं। जैसे कहा जाता है कि शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजू गमन करता है। चौदह राजू गमन कर चुका, वहाँ एक समय नहीं व्यतीत हुआ है। समयसे कम कोई समय नहीं होता, लेकिन ऐसा सोचा जाये कि एक परमाणु जब उतनी जगहको उल्लंघन करके गया तो उस उल्लंघनके समयमें और भी खण्ड कल्पना कर लिया। ज्ञानकी महिमा विचित्र है। मूल बात यह कही जा रही है कि यद्यपि एक समयकी पर्यायका छद्मस्थ जीव परिचय नहीं करते, फिर भी उसका अनुमान और आगम द्वारा, युक्ति द्वारा उसका बोध किया करते हैं और यह एक समयकी पर्याय चूँकि अन्यसे सम्बन्ध

नहीं निरखा जा रहा इसलिए शुद्ध है और ऐसे शुद्धकी अनित्य पर्यायके निरखते समय जीवके विकल्प नहीं दौड़ा करते। उन विकल्पोंका उपशमनका अवसर है, इस कारण मुमुक्षु जन इस नयकी दृष्टिसे भी लाभ लिया करते हैं, परन्तु इसका यदि एकान्त हो जाता है तो वस्तुस्वरूप खण्डित हो जाता है। इसलिए प्रमाण द्वारा जिन्होंने वस्तुस्वरूपका परिचय किया है उनको ही अधिकार है कि कभी-कभी इस नयका उपयोग भी करें।

सत्तासापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नामका पर्यायार्थिकहेतुक निश्चय पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनय चौथा प्रकार है सत्तासापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय। इस नयकी दृष्टिमें पर्याय तो देखा जा रहा है, मगर ध्रुवताकी अपेक्षा रखते हुए देखा जा रहा है चूंकि उत्पादव्यय देखा जा रहा है, इसलिए अशुद्ध पर्याय अनित्य है और सत्तासापेक्ष देखा जा रहा है इस कारण यह निश्चयनकी ओर आ रहा है। इस नयका विषय है, जैसे पर्याय उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक तो द्रव्य होता है, लेकिन द्रव्यसे सर्वथा भिन्न पर्याय नहीं होती और चूंकि इस नयकी दृष्टिमें पर्यायपनेके नातेसे पर्यायको देखा जा रहा है तो चूंकि पर्याय बिना कभी द्रव्य हो ही नहीं सकता, प्रतिसमय द्रव्यमें कोई न कोई पर्याय रहेगी ही, इसलिए पर्याय ध्रुव है याने पर्याय सदा रहा करेगी। पर्यायोंका कभी उल्लंघन न होगा अर्थात् पर्यायशून्य कभी द्रव्य हो जाय, ऐसा त्रिकाल नहीं होता, इस कारण पर्याय ध्रुव है और चूंकि पर्याय उत्पन्न हुई है, नष्ट हुई है वह वस्तुका परिणमन है, इस कारण उत्पादव्यय है। इस प्रकार पर्यायको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक निरखना इस दृष्टिका विषय है। इस नयके उपयोगसे वस्तु स्वरूपके अधिगममें सहायता मिलती है। पदार्थ हमेशा रहेगा और पर्यायरूप रहेगा, फिर भी वहाँ उनमें पर्याय प्रतिक्षण नवीन-नवीन होती जायेगी, पुरानी-पुरानी विलीन होती जायेगी। इस प्रकार एक शुद्ध वस्तुका स्वरूप जाना जा रहा है। साथ ही ऐसा वस्तुस्वरूप जाननेमें स्वतन्त्रका भी बोध हो रहा है। प्रत्येक पदार्थमें ऐसी ही विधि है, और इस विधिमें कोई किसीकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता, इसलिए प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, ऐसा इस नयमें परिचय मिलता है।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक नामका पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयका ५वाँ प्रकार है कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य शुद्धपर्यायार्थिकनय। इस नयमें दिखाया तो जा रहा है संसारी जीवोंको, पर उन्हें दिखा जा रहा है एक बाह्यदृष्टिमें पर्याय रूप से, किन्तु केवल परिणमन सामान्य दृष्टि से। और साथ ही निरखा जा रहा है कर्मोपाधिकी अपेक्षासे रहित। तो जहाँ कर्मोपाधिककी अपेक्षा छोड़ दी, केवल परिणमनको ग्रहण किया तो उपाधि निरपेक्ष परिणमन तो परिणमन ही है। उस परिणमनमें विकार तो न देखा जा सकेगा। परिणमन सामान्य देखा जा रहा है, और उस परिणमनकी दृष्टिसे जैसा सिद्धका परिणमन है तैसा संसारी जीवोंका परिणमन है। यह बात विशेष ध्यानमें देनी है। कर्मोपाधिकी अपेक्षा छोड़कर परिणमन सामान्यकी कला है और उस कलासे क्या परिणमन होता है, इतनी भी बात यहाँ देखी जा रही है। निमित्त सन्निधान या निमित्त वियोग

इसके कारण प्रभावित पर्यायकी यहाँ दृष्टि नहीं है, अतः इस दृष्टिमें यही देखा जा रहा है कि संसारी जीवका परिणमन सिद्धपर्यायके समान शुद्ध है। यह शुद्धता केवल परिणमन सामान्य रूप है, यह दृष्टिमें रखकर इस नयका विषय समझना चाहिए।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नामक पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयका छठवाँ प्रकार है कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्यअशुद्धपर्यायार्थिकनय। इस नयकी दृष्टिमें अशुद्ध विकारी पर्यायको ग्रहण किया गया है और साथ ही इसमें कर्मोपाधिकी अपेक्षा है, पर मुख्य विषय द्रव्य है याने द्रव्यके बारेमें जाननेका प्रयास है, इस कारण यह कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिकनय नामका पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय है। इस नयकी दृष्टिका उदाहरण है, जैसे संसारी जीवोंके जन्म-मरण होते हैं यहाँ किसकी चर्चा चल रही है? संसारी जीवों की। जीवद्रव्य है और संसारी विशेषण लगनेसे अशुद्ध द्रव्य हो गया, उस अशुद्ध द्रव्यकी बात चल रही है। अतएव यह पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय है। इस नयकी दृष्टिसे यह शिक्षा मिलती है कि वर्तमानमें वास्तविकता यह ही हो रही कि यह संसारी जीव कर्मके परतंत्र होता हुआ जन्म-मरण प्राप्त कर रहा है। याने किसी भवको छोड़कर किसी अन्य भवको ग्रहण करता रहता है। यह कोई सम्भावित बात नहीं है कि इस जीवका यह अशुद्ध परिणमन चल रहा है। यदि इसको अवास्तविक माना जाये अर्थात् एक भ्रम कल्पना ही माना जाये, ये होते नहीं हैं जीव के। होते होंगे किसी अन्य प्रकृति आदिक के, तो इस कपोल कल्पनाके आशयमें इस जीवको इस विपत्तिसे बचनेका प्रयास करनेका अवसर नहीं मिलता। यहाँ तक विवरण पद्धति वाले निश्चयनयका वर्णन हुआ।

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय अब व्यवहारनयका वर्णन चलता है। निश्चयनय और व्यवहारनयमें यहाँ यह अन्तर जानना कि निश्चयनयमें तो एक दृष्टिसे अभेददृष्टिसे एक परिचय बताया गया और इस व्यवहारनयसे इन समग्र बातोंका प्रतिपादन किया जा रहा है। व्यवहारनयका अर्थ है कि जो वस्तुको मुख्यतासे देखे, विशेष एवं बहिरंग विषयकी मुख्यतासे देखे। अनेक वस्तुओंके सम्बंधकी दृष्टि बनाकर देखे यह सब व्यवहारनय कहलाता है। इस व्यवहारनयके चार भेद हैं। पहला प्रकार है उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय। इस नयकी दृष्टि समझनेके लिए इन तीन शब्दों पर विशेष ध्यान देना उपचरित, असद्भूत और व्यवहार। व्यवहार कहते हैं प्रतिपादन करनेको, जिसमें व्यवहरण हो, प्रतिपादन हो, लोग समझें, समझा जाय, प्रतिबोधकी विध बने, ऐसी प्रयोगात्मक विधिको व्यवहारनय कहते हैं। तो व्यवहारके मायने हैं प्रतिपादन, और असद्भूतका अर्थ है कि जो वस्तुमें अपने सत्त्वसे तो न हो याने सहजस्वभाव तो नहीं है, किन्तु हो गया है, होता है ऐसा कि परपदार्थका निमित्त सन्निधान पाकर कोई विकार उपादानमें हुआ करता।

जैसे रंग-बिरंगी चीजका सन्निधान हुआ, तो दर्पण उन रंग-बिरंगोंके अनुकूल परिणाम जाता है, प्रतिबिम्बित हो जाता है तो ऐसे ही आत्मामें जो भाव अपने स्वरूपसे तो नहीं हैं, किन्तु कर्मविपाकका

सन्निधान पाकर हुए हों तो वे असद्भूत कहलाते हैं, तो रागादिक भाव असद्भूत हैं। उनका प्रतिपादन करना असद्भूत व्यवहार है और ये आत्माके हैं। इस प्रकार उन रागादिक भावोंको आत्माके कहना, यह उपचरित है। तो उपचरित तो कहलाया कि जो आत्माकी चीज तो नहीं है, नितु जिस निमित्तका सान्निध्य पाकर हुआ है उस निमित्तके न बनाकर उस निरपराध निरपेक्ष अशुद्ध होकर भी सन्निधान स्ववश आत्माके कहना, यह हुआ उपचरित असद्भूतव्यवहार। यहाँ यह ध्यानमें देना कि असद्भूत तो कहलाता है पर उपाधिका निमित्त पाकर होने वाला भाव, किन्तु वह भाव यदि बुद्धिगत है, समझने-समझानेके व्यवहारमें आता है उसे आत्माका कहना सो उपचार है। तो इस दृष्टिमें इतनी बात आयी कि ये क्रोधादिक विभाव केवल जीवके तो हैं नहीं, क्योंकि ये पौद्गलिक कर्मके विपाक हैं। पुद्गलकर्मका उदय आया और वह अनुभाग, वह पुद्गलकर्मकी दशा जो उस उदयमें बनी है वह इस आत्मामें प्रतिबिम्बित हुआ और उसे इस आत्माने अपनी बुद्धिमें लिया, ऐसा क्रोधादिक भावोंका प्रतिपादन होना सो उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। इससे शिक्षा यह मिलती है कि ये विभाव आत्माके स्वरूप नहीं हैं, क्योंकि असद्भूत हैं, ये आत्माके नहीं कहे जाने चाहिएं, क्योंकि ये औपाधिक हैं। तो इन समस्त विभावोंको पौद्गलिक जानकर पुद्गल विपाकका प्रतिफलन जानकर इनसे अपना लगाव न रखना चाहिए और इससे विरक्त रहकर निज शुद्ध स्वभावकी ओर उन्मुख होना चाहिए।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय दूसरा व्यवहारनय है अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय। इसमें विषय तो वही है जो उपचरित असद्भूत व्यवहारनयमें था याने कर्मोपाधिका सन्निधान पाकर जो विकार हुए वे असद्भूत हैं, उसका ही कथन है, किन्तु जो बुद्धिमें न आयें, ऐसे सूक्ष्म विभावोंको विषय किया है इस नयने। उपचार नहीं हो सकता। किसका है, कैसा है, इसका विवरण नहीं चलता। आगमसे और युक्तिसे जाना कि कर्मविपाकका सन्निधान पाकर नियमसे प्रतिफलन होता है तो वह प्रतिफलन विभाव है, असद्भूत है। किन्तु बुद्धिगत नहीं है, अतएव अनुपचरित है। जैसे जो सूक्ष्म रागादिक भाव हैं उनका उपचार तो हो नहीं सकता, क्योंकि वे सूक्ष्म हैं और बतलाने-समझानेके व्यवहार तक में नहीं आ पाते, इस कारण अनुपचरित हैं और केवल जीवसे नहीं होते इसलिए असद्भूत हैं, और फिर उनको जीवके बताया गया, प्रतिपादन किया गया, यह व्यवहार है। इस नयसे समझ बनाकर यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीवके जो सहज ज्ञायकस्वरूप हैं और जीवकी जो कुछ भी शक्तियाँ हैं, अनुजीवी गुण हैं उनका परिणमन उसके अतिरिक्त जो भी परिणाम हैं वे विभाव परिणाम हैं। कितने ही सूक्ष्म हों, बुद्धिमें भी नहीं आ रहे, फिर भी ये विभाव हैं और हेय तत्त्व हैं, जो आगमसे जाने, युक्तिसे जाने उससे भी विरक्तता होनी चाहिए।

उपचरित सद्भूतव्यवहारनय व्यवहारनयका तीसरा प्रयोग है उपचरित सद्भूतव्यवहारनय। इस नयकी दृष्टिमें बात तो सद्भूत कही जा रही है याने उसी वस्तुका गुण उसी वस्तुमें बताया जा रहा

है, यह सद्भूतपना है, पर उस गुणका परकी अपेक्षासे व्यवहार हो तो वह उपचरित हो जाता है। जैसे यह कहना कि आत्मा स्व और परका ज्ञाता है। विशुद्धता तो यह है कि आत्मा जाननस्वभाव वाला है, अब उसे किसका जानने वाला है, इसके उत्तरके रूपमें प्रमेय पदार्थका सम्बंध जैसा बताकर कहा जाये तो यह उपचरित सद्भूतव्यवहारनय हो जाता है। आत्मा स्व-परका ज्ञाता है सो यह आत्माका गुण ही है। यह किसी उपाधिसे नहीं आया, इस कारण सद्भूत है, और उस ज्ञातापनका आत्मासे भेद कहकर बताया जा रहा है कि यह आत्मा स्व और परका ज्ञाता है, यह उपचरित व्यवहार है। आत्मा वास्तवमें किस प्रकारका स्वभाव किए हुए है इस तथ्यको सही रूपमें रखता है तो स्व-परका ज्ञाता है यह रूप नहीं रखा जा सकता। यह तो एक उपचरित व्यवहारसे समझाया गया है। आत्मा तो स्वयं सहजसामान्यविशेषात्मक है और उसकी अर्थक्रिया भी चलती है। उसको समझानेके लिए स्व-परका ज्ञाता है यों भेदरूप करके कथन करना यह है उपचरित सद्भूतव्यवहारनय।

अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय व्यवहारनयका चौथा प्रकार है अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय। इस नयने अनुपचरित तत्त्वकों ही बताया, सद्भूत तत्त्वको ही बताया। जिस तत्त्वको बताया वह एक पवित्र तत्त्व है, पर उसका व्यवहार किया वह अनुपचरित सद्भूतव्यवहार है। जिस पदार्थमें जो गुण है उसे उसीके ही बताया, वह बुद्धिकी अपेक्षारहित बताया तो यह अनुपचरित कहलाता है। जैसे ज्ञान जीवका गुण है, यद्यपि जीव जानता है तो जाननेमें क्या आया, क्या बात बनी, हुआ क्या जाननेमें, उसका वर्णन तो स्व और परका उपचार करके कहा जायेगा, पर यहाँ उपचार नहीं किया गया। केवल एक ज्ञानशक्ति ही बता दी गई। तो जीवका ज्ञान गुण है। यहाँ अनुपचरित है, सद्भूत है और चूंकि यह है निश्चयनयका विषय। प्रतिपादन करने वाला है अतएव व्यवहारनय है। इस प्रकार जिन नयोंसे वस्तुस्वरूपका परिचय कराया जाता है उन नयोंकी बात कही गई है। नयोंसे वस्तुका परिचय करके ज्ञान, उपादान और अपेक्षा अर्थात् त्यागने योग्यको त्याग देना, ग्रहण करने योग्यको ग्रहण कर लेना और उपेक्षा योग्यकी उपेक्षा कर लेना, यह उसका फल है।

द्विविध सद्भूतव्यवहारनयोंका वर्णन व्यवहारनयका परिचय अन्य प्रकारसे भी होता है, जिन्हें ५ प्रकारोंमें विभक्त कर लेना चाहिए। पहला प्रकार है शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय। पदार्थ तो शुद्ध है अर्थात् परसे विभक्त और स्वमें तन्मय है, अवक्तव्य है, अखण्ड है, स्वभावात्मक है उस शुद्ध पदार्थमें गुणगुणीका भेद करना, पर्याय पर्यावानका भेद करना यह शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय कहलाता है। जैसे यहाँ बताते कि चेतन द्रव्यमें चेतन है तो चेतनद्रव्य अखण्ड है, जो है सो ही है, एकस्वरूप है। फिर भी उसमें स्वभाव-स्वभाववानका भेद करके बताया कि चेतन द्रव्यमें चेतन है अथवा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीका भेद करके बताया। जैसे आत्माकी स्वाभाविक पर्याय सिद्धपर्याय है। अब जैसे सिद्धप्रभुका कोई ध्यान करता है, ध्यानमें लेता है तो उस ध्यानमें सिद्धप्रभु किस प्रकारसे विषयभूत होते हैं? एक शुद्ध अखंड ज्योति। वहाँ द्रव्य है और इस शुद्ध पर्यायके रूपमें देखा जा रहा है। जो

भी परखा गया उसको पर्याय और पर्यावानका भेद करके कहना कि सिद्धभगवानका शुद्ध पर्याय है, आत्माकी स्वाभाविक पर्याय सिद्धपर्याय है। इस तरह पर्याय और पर्यायवानमें भेद करके कहना, यह शुद्ध सद्भूतव्यवहार है। दूसरा व्यवहार है अशुद्ध सद्भूतव्यवहार। किया तो जा रहा है सद्भूतका व्यवहार, परन्तु वह सद्भूत अशुद्ध है याने उस ही द्रव्यके अशुद्ध परिणमनका उस ही द्रव्यमें व्यवहार किया जावे तो वह अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है। इस नयमें अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणीका भेद करके कथन होता है तथा अशुद्ध पर्यायका अशुद्ध पर्यायवानसे भेद करके कथन होता है। जैसे कहना कि अज्ञानी जीवके भाव अज्ञानरूप हैं, तो वह जीव अज्ञानी है, उस द्रव्यकी विशेष रूपसे व्याख्या हुई है कि अज्ञानी जीव। उस अज्ञानी जीवके परिणमनको व्यवहारमें कहना सो अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है।

त्रिविध असद्भूतव्यवहारनयोंका वर्णन तीसरा व्यवहार है स्वजाति असद्भूतव्यवहार। यहाँ अब असद्भूतका वर्णन चलेगा। इस नयकी दृष्टिमें प्रयोजनवश अन्य रूपसे वर्णन किया गया है। जैसी बात नहीं है, जिसका धर्म नहीं है किसी सम्बन्धके कारण वह धर्म अन्यमें बताना, किन्तु बताना अपनी जाति वालेमें। तो ऐसा अपनी जातिमें असद्भूत तत्त्वका व्यवहार आरोप करना स्वजातिका असद्भूतव्यवहारनय है। जैसे कहना कि परमाणु बहुप्रदेशी है। वास्तवमें परमाणु बहुप्रदेशी नहीं होता, परमाणु तो एकप्रदेशी ही होता, किन्तु अनेक परमाणुओंका सम्बन्ध होनेके कारण एक स्कंध बनता है और स्कंध बहुप्रदेशी है। स्कंध यद्यपि द्रव्य नहीं है, किन्तु वह अनेक द्रव्योंका समुदाय है, लेकिन है तो बहुप्रदेशी तो स्कंधको बहुप्रदेशका स्कंधकी जातिमें आये हुए परमाणुमें आरोप करना स्वजाति असद्भूत व्यवहार है। इस नयसे यह निर्णय बताया गया है कि असद्भूत तत्त्व वास्तविक तथ्य तो नहीं है, लेकिन उसका व्यवहार उसकी ही जातिमें किया गया है। तो वस्तुस्वरूपके परिचयका वर्णन है। कहाँ किस प्रकारसे वस्तुका परिचय किया जाता है? यह सब कथन इन नयोंके प्रकरणमें कहा गया है। चौथा प्रकार है विजातीय असद्भूतव्यवहारनय। इस नयमें व्यवहार तो किया गया असद्भूतका याने जो पदार्थमें वास्तविक तो नहीं है, किन्तु किसी पर उपाधि सम्बन्धवश उसका उपचार किया गया है, जैसे यहाँ कहना कि मतिज्ञान मूर्त है, आत्मा मूर्त है तो आत्मा अथवा मतिज्ञान ये कुछ वास्तवमें मूर्त तो नहीं हैं, किन्तु जब आत्माका कर्म-उपाधिके साथ बन्धन है तो उस बन्धनके प्रति एकत्व होनेसे आत्मा अमूर्त कहा जाता है, तो यह स्थिति मूर्त द्रव्यके सम्बन्धके कारण बनी है, उसका आत्मामें व्यवहार करना विजातीय असद्भूतव्यवहार है। ५वां प्रकार है स्वजाति विजातीय असद्भूतव्यवहार, याने इस नयकी दृष्टिमें कथन तो होगा असद्भूतका, मगर उस असद्भूतका ऐसे पदार्थमें उपचार किया गया है जो पदार्थ उस धर्मके स्वजातिमें आता और विजातिमें भी आता। जैसे यह कहना कि जीव व अजीव दोनों ही ज्ञान हैं, क्योंकि ज्ञानके विषयभूत होनेसे। एक दार्शनिकका सिद्धान्त है कि जगतमें जो कुछ है वह सब ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञानमें आया तो हमने जाना। ज्ञानमें नहीं है तो हम जानें क्या? तो वह पदार्थ वस्तुतः कुछ नहीं है, किन्तु वह ज्ञानका ही परिणमन है।

तो यह ज्ञान बताया जा रहा स्वजाति और विजातीय दोनों में। ज्ञानका जो विषय है वह स्वयं ज्ञान तो नहीं है, फिर भी उसमें ज्ञानका उपचार है और उसे बताया जा रहा है ज्ञानका जाति वाला द्रव्य जीवमें और ज्ञानके विरुद्ध द्रव्य अजीब में। तो इस तरह ज्ञानके विषयमें ज्ञानका व्यवहार करना और उसे जीव और अजीबके कहना यह स्वजाति विजाति असद्भूतव्यवहारनय है। इस तरह यह सब नयोंका वर्णन हुआ।

प्रमाण और नयोंकी उपयोगिताका समर्थन प्रमाणसे भले प्रकार परिचय किए हुए पदार्थमें किसी दृष्टिको मुख्य करके उस विषयको प्रधानतया जानना, सो यह है नयका विषय। नयोंके परिचयसे प्रमाणका परिचय बनता है और प्रमाणके परिचयसे नयोंमें समीचीनता आती है। इस प्रकार जो इस अध्यायमें ग्रन्थकार उमास्वामी महाराजने जो एक उद्देश्य बताया था प्रथम अध्यायमें कि जीवोंको मोक्षमार्ग अभीष्ट है, वह मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, समयज्ञान, समयकृचारित्ररूप है। सम्यग्दर्शन कहते हैं पदार्थका जैसा भूतार्थ विधिसे स्वरूप है उस रूपमें पदार्थका परिचय करना, उस परिचयके लिए आत्मतत्त्व और अनात्मतत्त्वका परिचय आवश्यक है, अर्थात् पदार्थोंका परिचय किया जाना चाहिए। सो उस परिचयका मुख्य उपाय एक सूत्रमें प्रमाण और नय बताया था। तबसे इस ही विषयका वर्णन चल रहा है कि वह प्रमाण और नय क्या है, कैसा है, जिसके द्वारा वस्तुका परिचय होता है? उस वर्णनमें नय तकका वर्णन यहाँ समाप्त हुआ है। अब अविशिष्ट थोड़ी बात और समझनी चाहिए कि प्रमाण और नयोंसे तो पदार्थके किसी तथ्यका परिचय होता है, लेकिन तथ्यका जहाँ सम्बंध तो नहीं है, केवल जीवोंके मोह रागद्वेषवश कल्पना जग रही है तो ऐसा परिचय, ऐसा व्यवहार न प्रमाणमें आता, न नयमें आता, किन्तु वह सब उपचार मात्र है। निश्चयनय और व्यवहारनय ये तो वस्तुके तथ्यको बताते हैं। एक विधिरूपसे बताता, दूसरा निषेध रूपसे बताता, पर परिचय करने वालेका उद्देश्य विशुद्ध स्वरूपका परिचय करता है। लेकिन एक पदार्थको दूसरे पदार्थका कह डालना यह तो उपचार है। नयमें भी शामिल नहीं होता। तो उपचार लोग तीन प्रकारसे किया करते हैं एक तो अपनी जातिमें, जिसका नाम है स्वजाति उपचरित असद्भूतव्यवहार। जैसे एक यह कहना कि पुत्र, स्त्री, बंधु, मित्र मेरे हैं। तो चेतनमें व्यवहार किया, इसलिए स्वजाति है और मेरा नहीं है फिर भी मेरा कहा जा रहा, यह असद्भूतव्यवहार है। यदि कोई अचेतनको ही अपनाये कि वस्त्र, मकान मेरे हैं तो यह भी असद्भूतका ही व्यवहार किया गया, किन्तु किया गया विजातिमें अर्थात् मेरा है यह, इस शब्दसे जिसने कहा मैं वह तो चेतन है और इस मेरेपनका उपचार व्यवहार किया गया है विजातिमें अचेतनमें तो यह है विजातीय उपचरित असद्भूतव्यवहार। यदि कोई यह बताये कि यह देश, नगर मेरा है तो देश क्या चीज है? चेतन और अचेतन पदार्थोंका समुदाय। मनुष्य भी हैं, मकान भी हैं, पशु-पक्षी भी हैं, इन सबका मिलकर जो रूप बना वह कहलाता है देश। तो देश हुआ स्वजाति और विजातिरूप, उसमें मेरेपनका व्यवहार किया गया, यह हुआ स्वजाति-विजाति

असद्भूतव्यवहार। यह सब उपचार मात्र है। और इन तीनों उपचारोंसे पहले जितना जो कुछ भी कथन आया वह वस्तुस्वरूपके परिचयके लिए था।

नयोंका मूलरूप और नयोंके वर्णनका प्रयोजन ये नय जितनी दृष्टियाँ बनायी जायें उतने बन जाते हैं। पर सभी नयोंके मूल स्रोत दो ही हैं (१) भेदनय, और (२) अभेदनय। प्रत्येक मनुष्य या तो अभेदमें कोई शामिल है या कोई भेदनयमें शामिल है। इन नयोंके परिचयसे लाभ यह है कि भेदनय और अभेदनयसे वस्तुके समस्त तथ्य पहिचाने जाते हैं। पहिचानकर यह ज्ञानी भव्य जीव भेदनयको गौण करता है, क्योंकि भेदनय विकल्पकी ओर ले जाता है और अभेदनयको मुख्य करता है, क्योंकि अभेदनय आत्माके उपयोगको अभेदकी ओर ले जाकर एक विकल्पजालसे दूर करता है, फिर भी ये दोनों विकल्प हैं। ज्ञात पुरुष इन दोनों नयोंका उपयोग सही उठाकर फिर दोनों नयोंसे भी अतीत होकर एक निज अनुभवनमात्र स्थितिमें रहता है। ऐसी एक मंगलमय अनुभूति जिन भव्य जीवोंको चाहिए उनका कर्तव्य है कि सर्वप्रथम नयोंके द्वारा वस्तुका सही परिचय करें, प्रमाणके द्वारा उसे प्रमाणित करें और अन्तमें सर्वविकल्पोंसे अतीत एक सहज अन्तस्तत्त्वका अनुभव कर इस मंगलमय समाधिको प्राप्त हों। इसके लिए ही इस प्रथम अध्यायमें वस्तुस्वरूपके अधिगमका उपाय विस्तारपूर्वक कहा गया है।

॥ मोक्षशास्त्र प्रवचन दशम् भाग समाप्त ॥